॥ श्री गौराङ्गो विजयतेतराम् ॥

Shri KESHADJI GOUDIYA MATH
Mathura (U.P.)

श्रीमद्भागवत-सार

लेखिका

चम्पकमञ्जरी राधादासी

प्रकाशक

विधुमंजरी राधादासी

राधाविनोद कुञ्ज, सेवाकुञ्ज वृन्दावन

महाभाव स्वरूपा त्वं कृष्णप्रिया वरीयसी।
प्रेमभक्तिप्रदे देवि ! राधिके ! त्वां नमाम्यहम् ॥

मूल्य :
श्रीराधाकृष्ण चरणकमल सेवा

पुस्तक का सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन सुरक्षित है।

॥ श्री गौराङ्गो विजयतेतराम् ॥

श्रीमद्भागवत-सार

लेखिका
चम्पकमञ्जरी राधादासी

प्रकाशक
विधुमंजरी राधादासी
राधाविनोद कुञ्ज, सेवाकुञ्ज वृन्दावन

महाभाव स्वरूपा त्वं कृष्णप्रिया वरीयसी।
प्रेमभक्तिप्रदे देवि ! राधिके ! त्वां नमाम्यहम् ॥

मूल्य :
श्रीराधाकृष्ण चरणकमल सेवा

पुस्तक का सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन सुरक्षित है।

मुद्रक : श्री हरिनाम प्रेस, बाग बुन्देला, वृन्दावन.

* दो शब्द *

श्री लेखिका चम्पकमञ्जरी राधादासी द्वारा प्रस्तुत "श्रीमद्-भागवत-सार" का आद्यतः अवलोकन किया। समस्त वर्णित विषयों को पढ़कर अन्तरात्मा के साक्ष्य से ऐसा प्रतीत हुआ कि परमगुरु श्रीबाबा दामोदरदास जी एवं गुरु श्रीविधुमञ्जरी राधादासी के कृपाप्रसाद, एवं अहैतुकी-कृपाकारिणी श्रीराधारानी के आदेश से ही उक्त प्रस्तुत पुस्तक में श्री लेखिका द्वारा स्वानुभूत, भक्ति, रसामृत, रहस्य के अतिरिक्त हृदयोद्गार—श्रीराधाचरण - कमल चञ्चरीक, भक्त प्रवर की भक्ति, भावना की पुनः - पुनः जागृति के लिये तथा श्रीमाध्वगौड़ीय सम्प्रदाय-भक्तिरसामृत के पिपासु एवं जिज्ञासुओं के आत्म कल्याण के लिये ही प्रकट किये गये हैं।

इससे साधारण जन, भक्तप्रवर-विद्वद्वृन्द एवं मध्यमवर्गीय भक्त-जन अवश्य लाभान्वित होकर आत्मधर्म के पूर्णरूप को आत्मसात करके श्रीराधारानी की चरण-शरण प्राप्त करेंगे।

मेरो निश्चित धारणा है कि भक्तिरसामृत ज्ञानी भक्त की स्वानुभूत भावों की जाग्रति, वृद्धि के लिये ऐसे ग्रन्थों का सतत् पाठ करना पड़ता है। अतः समस्त भक्तप्रवर इस "श्रीमद्भागवत-सार का मनन, पठन, पाठन कर अवश्य लाभान्वित होंगे। अलंपल्लवितेन।

विनीत :

शक्लोपाह्व रामनारायण शर्मा

* समर्पणम् *

श्रीकृष्णचैतन्यचरणपरमभक्तानां श्रीगोविन्दकुण्ड वृन्दावन निवासिनां
श्रीबाबा दामोदर दासानां श्रीचरणकमलेषु
चम्पकमञ्जर्या राधादास्या
सादरं सविनयं समर्प्यतेऽयं
श्रीमद्भागवत-सार पुष्पांजलिः

बन्दे गुरुनीशभक्तानीश मीशावतारकान् ।
तत्प्रकाशांश्च तच्छक्तीः कृष्णचैतन्यसंज्ञकम् ॥

प्रवृत्ति धर्म में प्रायः कामनाओं का संश्लेष रहता है (स्वधर्म में) स्वभाव करके सब आत्मा में विघ्न करने वाले हैं। कलियुग में प्रायः पाषण्ड धर्म की प्रवृत्ति रहती है। उसको अनात्म धर्म ही कहा जा सकता है। जीव प्रायः उसमें ही प्रवर्त्तमान होता है। अतः अकिंचन जनों के प्रिय प्रभु, श्रीकृष्ण ने इस कलियुग में गौरांग स्वरूप से अवतार लिया तथा निज राधाभाव से विभावित होकर राधाप्रेम का आस्वादन करते हुये जो कुछ भी शिक्षा स्वयं दी तथा अपने परिकरों द्वारा दिलाई वे सम्पूर्ण रूप से श्रीमद्भागवत सार है।

मैं अति तुच्छ दासी उस सार में से जो कुछ क्रियात्मक रूप से समझ पाई उसको लेखनी बद्ध करने का प्रयास श्रीराधिका जी के आदेश मात्र से हो रहा है। भूलों की पाठकों से क्षमा मांगती हूँ।

श्रीगौरांग प्रेमी एक भक्त की पूर्व जन्मों की सुकृत्तियों का ही फल है कि उनका पूर्ण आर्थिक सहयोग इस पुस्तक के प्रकाशन में हुआ है। मुझे यह कामना करने का सौभाग्य है कि ऐसे वैष्णव को प्रेमाभक्ति प्राप्त हो।

—चम्पक मञ्जरी

वर्णित-विषय

१—श्रीमद्भागवत ही श्रीकृष्ण स्वरूप १

२—धर्म का सत्य रूप १२

३—सम्बन्ध ज्ञान, अभिधेय, प्रयोजन १७

४—श्रीचैतन्य शिक्षामृत २३

५—युगल परिहार स्तोत्र ३५

६—युगलाष्टकं ३८

७—श्रीमहाप्रभु द्वारा अपने स्वरूप का स्वयं वर्णन ३९

८—श्री श्रीराधा रस मञ्जरी ४१

९—श्री पौर्णमासी कृत श्रीराधा-कृष्ण गायन ४५

कलियुगपावनावतार

* श्री श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभु *

श्रीमद्भागवत ही श्रीकृष्ण रूप

आज पुरुषोत्तम मास की दूसरी एकादशी है (ता: ९-६-८०)

चित्त चाहता है श्रीमद्भागवत के रूप पर दो शब्द लिखूँ। हे स्वामिनी जू ! आपकी कृपा के बिना यह प्रयास असम्भव है।

श्रीकृष्ण नाम, श्रीकृष्ण रूप, श्रीकृष्ण गुण, श्रीकृष्ण लीलायें श्रीकृष्ण धाम एव श्रीकृष्ण परिकर, एक ही हैं—पृथक पृथक नहीं—सनातन हैं तथा अखंड हैं। श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण का पूर्ण विवरण है। श्रीकृष्ण चरित्र कथा ही तो श्रीकृष्ण का स्वरूप है। अतः श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण का दिव्य स्वरूप है।

जिस स्थान पर श्रीमद्भागवत की कथा का एक श्लोक भी कहा जाता है—वही स्थान श्रीधाम है—वहीं पर भूलोक से समस्त तीर्थ उपस्थित रहते हैं।

पद्मपुराण में वर्णित है—कि श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण के दिव्य स्वरूप के १२ अंग हैं—प्रथम व द्वितीय स्कन्ध श्रीकृष्ण के दोनों दिव्य चरण हैं—ततीय व चौथा स्कन्ध श्रीकृष्ण की दिव्य जांघें हैं पंचम स्कन्ध नाभि है—छठवां श्रीकृष्ण का वक्षस्थल है—सातवां तथा आठवां स्कन्ध श्रीकृष्ण की दोनों दिव्य भुजायें हैं नवमां स्कन्ध उनका दिव्य कंठ है—दसवां स्कन्ध उनका दिव्य कमल मुख है—ग्यारहवां स्कन्ध उनका दिव्य मस्तक है बारहवां स्कन्ध उनका दिव्य सिर है॥

संसार रूपी भयंकर समुद्र को पार करने के लिये श्रीमद्भागवत एक ही सुदृढ़ पुल है, जिसमें किसी भी प्रकार का भय नहीं है। निर्भय पुल है।

गरुड़ पुराण कहती है कि श्रीमद्भागवत ही ब्रह्म सूत्र (वेदान्त तत्व ज्ञान) का वास्तविक अर्थ है—और श्रीमहाभारत का सही २ प्रकाश है। गायत्री का वास्तविक पूर्ण रूपेण विवरण है—वेदों का विस्तार है।

श्रीवेदव्यास जी कहते हैं कि जो वेदान्त तत्व, महाभारत—गायत्री मन्त्र—वेदों के पवित्र गायन—तथा चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त

करना चाहते हैं उन्हें वास्तविक गुरु द्वारा श्रीमद्भागवत को पढ़ना व सुनना चाहिये। श्रीमद्भागवत् समस्त वेद वेदान्त तथा उपनिषदों का सार है। जो कोई इसके आध्यात्मिक अमृतमय रूप को आस्वादन करते हैं उन्हें अन्य सद्ग्रन्थ में कोई रुचि नहीं रहेगी—जिस प्रकार सूर्य स्वयं प्रकाशित होते हैं अपनी ही तेज द्वारा। सूर्य के लिये किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। श्रीमद्भागवत् भी उसी प्रकार आध्यात्मिक सूर्य है जो अपने द्वारा अपने आध्यात्म तेज द्वारा प्रकाशित है॥

श्रीकृष्ण योगिराज—धर्म के रक्षक जब गोलोक धाम पधारे तब सनातन धर्म ने भी उन्हीं की शरण ली।

नैमिषारण्य क्षेत्र में जब श्रीमद्भागवत् तीसरी बार सुनाई जारही थी तो ६०००० साठ हजार सन्तों ने प्रश्न किया। उसके उत्तर में श्रीसूतजी बोले - श्रीकृष्ण ने द्वापर के अन्त में दिव्य लीलाओं का अन्त किया और वे अब द्वापर गोचर होना बन्द होगई। भूतल के जीवों के लिये, उस समय श्रीमद्भागवत समस्त पुराणों से ऊपर उठकर अपना आध्यात्मिक प्रकाश फैलाने लगी क्योंकि श्रीमद्भागवत व श्रीकृष्ण एक ही हैं—यानी श्रीकृष्ण का पूर्ण स्थान श्रीमद्भागवत ने ले लिया और आत्मा के वास्तविक प्रकाश को चारों ओर फैलाना प्रारम्भ कर दिया—कि अन्तिम लक्ष्य जीव का क्या है? और पूर्ण सन्तुष्टता आध्यात्मिक क्षेत्र में कहां है? इस पर पूर्ण प्रकाश डालदिया क्योंकि कलियुग के प्रभाव से आध्यात्मिक तत्व छिप गया था। हर सत्य ज्ञाता आचार्य ने अपने सिद्धान्तों के अनुसार ब्रह्म सूत्र श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषदों की टीका की है। लेकिन दुर्भाग्य का विषय यह है कि आध्यात्मिक तत्ववेत्ताओं ने प्रथमतः जो टीकायें की हैं उनको अधिकांश लोगों ने भ्रमात्मक रूप से ही जाना है। यहां तक हुआ है कि इस नासमझी के कारण इन सिद्धान्तों के मानने वालों में आपस में घृणा के बीज भी पाये जाते हैं।

परन्तु स्वच्छ हृदय व पवित्र मन के द्वारा विचार करने पर यही प्रतीत होता है कि इन प्रथम प्रथम सिद्धान्तों में एकता ही है। श्रीमद्भागवत ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसकी टीका में पूर्ण एकता है। यह सब कुछ श्रीवेदव्यास कृत है अतः इसमें किसी प्रकार के भ्रम का प्रश्न ही नहीं उठता।

हर धर्म के तत्व वेत्ता—धर्म का हर तत्ववेत्ता, अपने अपने

अनुगामियों को मुख्यतया ३ प्रचण्ड सिद्धान्तों की ओर ही आकर्षित करता है (१) सम्बन्ध ज्ञान (२) अभिधेय (३) प्रयोजन

उस सम्बन्ध का ज्ञान होना—साधक जहाँ सदैव से ही सम्बन्धित है उस वास्तविता का पूर्ण ज्ञान यानी जिसकी साधक को चाहना है, उसका पूर्ण ज्ञान —

(२) अभिधेय —वह उपाय, विधि जिसके द्वारा सम्बन्ध तक पहुँचा जावे

(३) प्रयोजन—अन्तिमध्येय लक्ष्य

ये तीनों बातें--प्रथम प्रथम साधक को प्रथम रूप से ही प्रतीत होती हैं –हर एक जीव के पुराने जन्मों के संस्कार यानी उनका सम्बन्ध अर्थात प्रथम प्रकार के महात्माओं तथा अन्य व्यक्तियों के साथ रहे हैं। अतः उनके सबके संस्कार भी प्रथक् २ हैं अतः यह तो स्वयं प्रकाशित है कि सम्बन्ध ज्ञान अभिधेय एवं प्रयोजन हर जीवों में संस्कारों के अनुसार पृथक पृथक हैं—होते हैं –यह बात आध्यात्मिक क्षेत्र में तो सत्य ही —सांसारिक क्षेत्र में भी सही है। अतः हर एक की रूचि भी भिन्न भिन्न होना स्वाभाविक है आध्यात्मिक क्षेत्र में किसी भी जीव के संस्कारों के विरुद्ध उसको उपदेश देना महान भूल एवं मूर्खता ही है क्योंकि सम्बन्ध ज्ञान अभिधेय एवं प्रयोजन भिन्न भिन्न हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा है कि संस्कारों के अनुसार इच्छायें उमड़ा करती हैं।—

ठाकुर नरोत्तम महाशय जी ने एक बात बड़े मर्म की कही है कि भजन करने के लिये स्वभाव को बदलना पड़ेगा।

श्रीमद्भागवत में यही तीन बातें मुख्यतया वर्णित हैं—(१)सम्बन्ध ज्ञान (२) अभिधेय (३) प्रयोजन

५००० वर्ष पूर्व श्रीमदभागवत की तीन कथायें तीन भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न वक्ताओं द्वारा कही गई थी जिनमें हजारों की संख्या में बड़े बड़े साधु एवं आचार्यों ने यह कथा श्रवण की थी। इनमें हजारों ऋषि मुनि भी शामिल थे।

प्रथमबार यह कथा बद्रिकाश्रम में श्रीवेदव्यास जी द्वारा सुनाई

गई थी जो श्रीमद्भागवत के रचयिता हैं तथा मुख्य श्रोता उनका पुत्र जो परम हंस ब्रह्मलीन श्री शुकदेव जी थे। उनके अलावा असंख्य ऋषि मुनि श्रोतागण थे।

परमहंस वह हैं जो वर्णाश्रय धर्म को पार कर गये हैं जिनको किसी भी धार्मिक कृत्य की आवश्यकता नहीं है उनको श्रीमद्भागवत श्रवण करने की क्या आवश्यकता हुई ?

श्रीशुकदेव जी को श्रीमद्भागवत श्रवण करने की क्या आवश्यकता हुई—इस प्रश्न का उत्तर उन्होंने स्वयं दिया है। यह उन्होंने मुजकफरनगर रेलवे जंकशन के पास गंगा किनारे पर शुकगढ़ी Sukartal पर श्रीमद-भागवत की कथा श्री परीक्षित को सुनाते समय दूसरी वार सुनाई गयी वहाँ पर उन्होंने इस प्रश्न का उत्तर दिया था। राजा परीक्षित अन्न जल त्यागकर सात दिन का व्रत मृत्यु पर्यन्त कर रहे थे। वहां पर हजारों मुनि ऋषि एवं राजा केवल इसी लिये उपस्थित हुये ये कि वे राजा परीक्षित के अन्तिम दर्शन कर सकें।

शमीक ऋषि ध्यानावस्थित दशा में थे वहां होकर राजा परीक्षित निकले उन्हें बड़ी प्यास लगी ऋषि से जल मांगा परन्तु उनकी समाधि अवस्था न टूटी तव राजा परीक्षित ने एक मरा हुआ साँप अपने धनुष की नोंक से उन ऋषि के गले में लपेट दिया और वहाँ से चल दिये। थोड़ी देर बाद उनका पुत्र शृंगी जो एक महान शक्तिवान था पिताकी स्थिति देखकर क्रोधित हुआ और उसने राजा परीक्षित को शाप दिया कि राजा परीक्षित सातवें दिन सांप के काटने से मृत्यु को प्राप्त होगा शमीक ऋषि को अपने पुत्र द्वारा श्राप से बड़ा दुःख हुआ और उसने राजा परीक्षित को समाचार भिजवा दिया।

राजा ने समाचार का हृदय में स्वागत किया और गंगा किनारे अन्नजल त्याग कर शरीर छोड़ने को बैठगये। असंख्य ऋषि मुनि राजाओं से सुनकर तुरन्त गंगा किनारे प्रस्थान किया। श्रीवेदव्यास श्रीनारद श्रीअगस्त, श्रीअंगिरा श्रीभृगुजी, आदि महान् ऋषि वहां उपस्थित हो गये।

राजा परीक्षित ने सबका महान आदर सत्कार किया उन्होंने

प्रश्न किया – ओ विद्वान ऋषि मुनियो ! विशेष रूप से एक मरणासन्न जीव का क्या कर्त्तव्य है—उसे क्या करना चाहिये कि वह सात दिन की अवधि में परमात्मा को प्राप्त कर सके ? प्रश्न अति उत्तम था ? ऋषि मुनियों ने प्रथम २ रास्ते बतलाना प्रारम्भ कर दिया जिससे भगवत् प्राप्ति सात दिनों में हो जावे कुछ ने त्याग बलिदान की बात कही, कुछ ने ध्यान और तपस्या की बात कही— परन्तु श्रीपरीक्षित किसी से सन्तुष्ट नहीं हुये क्योंकि समय बहुत कम था और ऋषि मुनियों का रास्ता दीर्घ था ।

श्रीव्यास देव तथा श्रीनारद जान बूझ कर शान्त रहे हालांकि वे राजा परीक्षित को उत्तर देकर पूर्ण सन्तुष्ट कर सकते थे ।

ठीक उसी समय भगवान्-कृपा से श्रीशुकदेव जी वहाँ आपहुँचे । उनके चेहरे से प्रभा चमक रही थी । राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी को दण्डवत् प्रणाम किया और अपना प्रश्न उनके सामने रख दिया— श्रीशुकदेव जी ने कहा" यह प्रश्न तो सर्वोत्तम प्रश्न है और मानव जाति के लिये अत्यन्त लाभ दायक है ।" श्री शुकदेव जी ने और कहा, सात दिन का समय भगवान—प्राप्ति के लिये काफी है । प्राचीन समय के राजा Khatvanga ने अपने मरणासन्न काल में थोड़े ही समय में भगवान्-प्राप्ति करली थी । राजन्, तुम्हें किसी भी प्रकार की तपस्या नहीं करनी पड़ेगी, केवल श्रीमद्भागवत ही तुम्हें श्रवण करनी है जो मैं स्वयं सुनाऊँगा—श्रीशुकदेव जी ने कहा, "ओ राजा ! हर चेतन जाब जो आध्यात्मिक लक्ष्य पर पहुँचता है, उसका यह परम कर्त्तव्य है कि वह श्रीकृष्ण की एकान्तिक प्रेममयी मानसिक सेवा करे—यह सेवा श्रीमद्-भागवत के श्रवण से—गायन से और उनकी लीलाओं के स्मरण करने, उनके नाम गायन से उनके रूप दर्शन करने एवं श्रीकृष्ण की लीलाओं से ही सदैव प्राप्ति होगी ।

श्रीशुकदेव जी बोले ! श्रीमद्भागवत ही श्रीकृष्ण हैं—यह समस्त वेद तथा उपनिषदों की रसायन (महान औषधि)है मैंने कलियुग के प्रारम्भ होते ही इस को अपने पूज्यपिता श्रीव्यास देव जी से स्वयं सुना है ।

ओ साधु राजा ! क्या तुम यह जानना चाहते हो कि मुझ ब्रह्मलीन समस्त मुक्ति-प्राप्त परमहंस को भी श्रीमद्भागवत श्रवण करने को

आवश्यकता क्यों हुई। मैं तुम्हें यह परम रहस्य बताता हूं।

यद्यपि मैं उस परमहंस अवस्था में था जहां मुझे किसी भी प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता नहीं थी न कुछ अध्ययन करने की आवश्यकता थी। परन्तु श्रीकृष्ण के अनुभवातीत अनुभवों से भरी हुई उनकी लीलाओं ने मेरे हृदय को अपनी ओर खींच लिया अतः यह श्रीमद्भागवतम् मुझे अपने पिताजी से श्रवण करना पड़ा। यहां पर परम गूढ़ रहस्य की बात यह है कि सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्त जीवों को उस स्थान से साधारणतया कोई नहीं उठा सकता है परन्तु यह श्रीकृष्णको ही इच्छा एवं कृपा है कि वे किस जीव को अपनी प्रेमाभक्ति का रसास्वादन कराना चाहते हैं उसे वहां से निकाल कर अपनी सान्निध्यता में रखते हैं। जिसका उदाहरण श्रीशुकदेव श्रीनारद एव सनकादि ऋषि हैं। ये श्रीशुकदेव जी श्रीराधिका जी के बांये हाथ पर अंगूठे पर विराजने वाले लोलाशुक हैं। श्रीराधिका जो इनको चुम्बन (प्यार)करती हैं। ये श्रीशुकदेव जी श्रीराधा कृष्ण के अनन्य एवं एकान्तिक उपासक हैं। ये गोपनीय से गोपनीय रहस्य मय पाठों के श्रोता हैं। इन्हें प्रिया प्रीतम के गोलोक धाम में नित्य निवास करने का पूर्ण अधिकार है।

तीसरी बार श्रीमद्भागवत को नैमिषारण्य में जो गोमती नदी के तटपर स्थित है सुनाया गया यहां पर ६०००० साठ हजार ऋषि-गण श्रीशौनक ऋषि के अनुगत होकर १००० वर्ष का यज्ञ करने लगे ताकि उनको वैकुण्ठ प्राप्त हो जावे। परन्तु वे लोग थक गये और वे बड़े इच्छुक हुये कि कोई दैवी शक्ति का आगमन उनकी इच्छा पूर्ति के लिये हो। ये साठ हजार ऋषि श्रीसूत जी के अनुगत हो गये। ये सूत जी श्रीव्यास देव जी एवं श्रीशुकदेव के परम अनुगामी थे। इन्होंने दूसरी बार श्रीमद्भागवत की कथा श्रीशुक देव जी द्वारा सुनाई गई सुनी थी। इसबार इस नैमिषारण्य क्षेत्र में श्रीसूतजी वक्ता थे तथा ६०००० ऋषिगण श्रोता थे।

इस तीसरी कथा के समय भी श्रीशौनक जी ने श्रीसूत गोस्वामी से यही प्रश्न किया कि श्रीशुकदेव जी! जो ब्रह्म परमानन्द में डूबे हुए थे और पूर्णतया मायारहित (detatched)सबके पृथक दूर थे उनको श्रीमद्भागवत को श्रवण करने की क्यों आवश्यकता हुई।

इस प्रश्न का उत्तर श्रीसूत गोस्वामी ने इस प्रकार दिया", वह जीव जो अपने आप में ही पूर्ण सन्तुष्ट हैं—आत्माराम हैं—जिन्होंने ब्रह्म की प्राप्ति पूर्णरूपेण करली है—जो पूर्णतया माया के प्रपंच से रजोगुण, तमोगण, सतोगुण के प्रभाव से दूर हैं—यानी इनसे बाहर हैं—वे भी स्वार्थ रहित प्रेमाभक्ति द्वारा उन श्रीकृष्ण की (जो सदैव जीव को आकर्षित करते रहते हैं) मानसिक सेवा करने के सदैव इच्छुक रहते हैं।"

अतः इसमें तो अब किसी प्रकार की शंका करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है कि श्रीमद्भागवत एक ऐसा ग्रन्थ है कि इसका अध्ययन तो हर एक को सदैव करना चाहिये चाहे वह प्रारम्भिक अवस्था में हो चाहे साधना की परिपक्व अबस्था में हो—यह श्रीमद्भागवत का विषय ही अनुभवातीत अनुभव है। अतः इसका अध्ययन इसमें योग्य गुरु द्वारा ही करना चाहिये। इसका श्रवण इसी के योग्य गुरु द्वारा करना चाहिये। जब श्री शुकदेव एवं श्री शौनक जैसों को श्रीमद्भागवत श्रवण करने के लिये गुरु को आवश्यकता हुई तो साधारण जीवों का क्या कहना है ? अगर कोई जीव केवल अपनी विद्या के बल पर श्रीमदभागवत को पढ़ना या सुनना आरम्भ करता है तो उसको यह महान मूर्खता ही होगी। क्योंकि न तो वह विद्याबल से समझ सकता है और न श्रोताओं को समझा सकता है। गलत फहमी पैदा करेगा। अतः सदैव इस विषय पर सतर्क रहना चाहिये क्योंकि यह विषय अनुभवातीत अनुपमेय है। (Transcendental) है।

सबसे आनन्द की बात यह रही कि परम विस्तारित रूप भागवत धर्म का प्रत्यक्ष रूप से सामने आया। आत्मा का वास्तविक धर्म जाग्रत हुआ जब तक वर्णाश्रम धर्म या धार्मिक-सामाजिक तत्व जीवों के मस्तिक में प्रमुख रूप रखता रहता है तब तक जीवन का आध्यात्मिक तत्व किसी को समझ में नहीं आ सकता है। यह नीच जाति का पुरुष किस प्रकार आध्यात्मिक तत्व का गुरू हो सकता है ? गुण और दोषों का विवेचन जब, जाति या धन के प्रभाव से किया जाता है यानी माया के प्रभाव सत्व, रज, तम द्वारा सांसारिक या भौतिक आधार पर जीव का मूल्यांकन आध्यात्म क्षेत्र में किया जाता है तब तक आध्यात्म तत्व का छींटा भी किसी को प्राप्त नहीं होता है। श्रीसूत गोस्वामी का जन्म नीच जाति में हुआ था। अतः ६०००० ऋषि मुनियों ने नीच जाति के जीव को गुरु

मानकर श्रीमद्भागवत का श्रवण किया। यही तो वास्तविक भागवत् धर्म का सच्चा निरूपण था। आज के पंडित –ब्राह्मण अधिकांश श्रीमद्-भागवत धर्म को सही रूप से न समझकर बड़ा अपराध करते हैं। भक्तों को साधकों को सावधान रहना चाहिये। यह श्रीमद्भागवत की तीसरी बैठक की महान विशेषता थी। समस्त ६०००० ऋषियों मुनियों ने जैसे ही वहां सूतजी के दर्शन किये उनको अपार हर्ष हुआ कि उनको सच्चे गुरु श्रीमद्भागवत सुनाने को मिल गये। यह इन मुनियों ने महान भगवत कृपा समझी। जब जीव के अन्दर से मिथ्याभिमान नष्ट हो जाता है और अपने बुरे जीवन पर वास्तविक पश्चाताप होता है तभी कोई वास्तविक गुरू प्राप्त होते हैं तो अध्यात्म तत्व की झलक जीव को प्राप्त होती है।

साठ हजार ऋषि मुनियों ने केवल आध्यात्मिक तत्व को समझने के लिये सूतजी को गुरू माना क्योंकि श्री सूतजी ब्रह्मलीन परम तत्व के वेत्ता थे।

श्री व्यासदेव जी ने समस्त चार को भागों में विभाजित किया। ऋग्वेद, अथर्ववेद, सामवेद, अथर्ववेद और उपनिषदों को रचा। यह सब कुछ करने पर भी उनको संतुष्टि नहीं हुई। और यह सोचने लगे कि कलियुग में मानव जीवन अति छोटा है और कोई जीव वेदों को पढ़ भी नहीं सकता है। तब उनका वास्तविक लाभ वे जीवन में कैसे उठायेंगे। तब उन्होंने सूक्ष्मरूप से ब्रह्मसूत्र या वेदान्त तत्व ज्ञान की रचना की परन्तु इतना करने पर भी उन्हें संतुष्टि नहीं हुई क्योंकि वे समझने लगे कि ये भी जीव की समझ में नहीं आवेंगे। और भिन्न-भिन्न प्राणी अपने पांडित्य के बल में भिन्न-भिन्न प्रकार के अर्थ करेंगे और भ्रम पैदा करेंगे।

तब श्री वेदव्यास जी ने श्रीमहाभारत तथा अनेक धर्म शास्त्रों की रचना की ताकि वैदिक धर्म का सच्चरूप जीवों को प्राप्त हो। परन्तु इस पर भी उनको सन्तुष्टि नहीं हुई।

एक दिन वे बद्रिकाश्रम में अपनी कुटी में बैठे हुये थे। उस समय उनका हृदय अति दुःखी था। उसी समय नारदजी जो व्यासजी के आध्यात्म गुरु थे, आये। श्री व्यासजी नारदजी को देखकर उठे और उनका आदर सत्कार करके उच्चासन दिया। तब श्री नारदजी बोले -- "ओ श्री पाराशर

के पुत्र ! क्या आप शरीर एवं मन से स्वस्थ हैं ?" आपने अत्यन्त आश्चर्य जनक कार्य महाभारत लिखकर किया है परन्तु मैं देखता हूं कि तुम अभी भी हृदय में प्रसन्न नहीं हो। इसका क्या कारण है ?

श्री व्यासदेव ने गुरू वचन सुने और उनसे प्रार्थना की, कि वे कृपा करके इस विषय पर अपना निर्णय दें। ओ गुरुदेव ! जब आपने इतनी कृपा की है कि आप यहां पधारे हैं तो आप कृपा करके मेरी हृदय की असन्तुष्टता का कारण भी अवश्य बताने की कृपा करें क्योंकि मैं इसका कारण नहीं जानता हूं।

श्री नारद जी बोले, "आपने चारों वेदों के प्रकाशित करने में, वेदान्त तत्व के रचने में, महाभारत इत्यादि महान ग्रंथों की रचना करने में बड़ा परिश्रम किया है। और आपका इरादा मानव की भलाई में हो रहा है कि इससे मानव का भला होगा। परन्तु आपने इन समस्त ग्रंथों में प्रत्यक्ष रूप से श्रीकृष्ण लीलाओं का वर्णन नहीं किया है। यही एकमात्र कारण आपकी असन्तुष्टता का है। जब आपकी कृतियों से श्रीकृष्ण प्रसन्न नहीं हुये हैं तो आपकी आत्मा को किस प्रकार संतुष्टि होगी ?

इन समस्त सद्ग्रन्थों में आपने विस्तार पूर्वक धर्म (Piety) अर्थ (Richer) काम (Enjoyment) and मोक्ष (Salration) यानी स्वधर्माचरण ही, मानव मात्र का जीवन का लक्ष्य वर्णन किया है। परन्तु आपने श्रीकृष्ण की अनुभवातीत मही लीलाओं का प्रभाव पूर्वक वर्णन नहीं किया है जो आपको करना चाहिये था।

यह सत्य है कि पुराणों में एवं महाभारत में श्रीविष्णु की गुणावलियों का वर्णन पूर्णतया किया गया है परन्तु कैवल्य-भक्ति (Kevala-Bhakti or the unalloyed single-winded devotion to Lord Shri Krishna. या श्रीकृष्ण-चरणों में प्रेमा-भक्ति रागानुगाभक्ति ही आध्यात्मिक क्षेत्र में जीव का परम एवं चरम लक्ष्य है। इसका वर्णन जितना महाभारत एवं पुराणों में होना चाहिये था, उतना नहीं हुआ है।

श्रीकृष्ण नाम, गुण, लीलाओं का गायन ही तो साधना और साध्य means and the goal की पराकाष्ठा है, अन्त है। इसके बाद कुछ करने को शेष नहीं रहता है। आपने उन ग्रन्थों में इसका वर्णन नहीं किया है। कभी-कभी तो आपने भक्ति को ही मोक्ष पाने का साधन

वर्णन कर दिया है। इसके अलावा मायाबद्धित जीव (Fettered souls) स्वाभाविक रूप से घृणात्मक, गन्दे, स्वार्थ कर्मों में "Sakam Karmas" में लगे रहते हैं। जो आत्मा के लिये वास्तविक शुभ एवं लाभकारी नहीं हैं। अतः आपने एक बड़ा बढ़ावा देकर जीवों के प्रति एक अपराध ही कर डाला है। अब किसी अन्य आचार्य या गुरु के लिये असम्भव होगा कि जीवों में मस्तिष्क से इस प्रकार के सकाम कर्मों की बेकारता को निकाल बाहर करें। यानी सकाम कर्म व्यर्थ हैं इनमें कोई आत्मिक लाभ नहीं हो सकता है इस प्रकार की धारणा को अब नष्ट करना अन्य किसी के लिये सम्भव नहीं है ताकि वे श्रीकृष्ण की निस्वार्थ भक्ति में लग सकें।

यद्यपि आपकी रचनायें साहित्य व व्याकरण आदि को दृष्टि से पूर्णतया पूर्ण हैं और श्रीहरि का जो भी वर्णन आपने किया है वह सांसारिक लोगों को अति प्रसन्नता देगा, परन्तु **पवित्र-भक्तों** (Pure sains) को यह कभी भी पसन्द नहीं आवेगा। श्रीकृष्ण के नाम, गुण, व लीलाओं का जो भी वर्णन आप करेंगे वह समस्त संसार को पवित्र कर देगा। और पवित्र-साधु (Pure saint) सदैव उन नामों को, गुणों को, लीलाओं का गायन करने में प्रसन्न होंगे आनन्दित रहेंगे। और अन्य जीवों को समझाने में आनन्द लेंगे—

तब श्री नारदजी ने व्यासजी को कहा—"आप भक्ति समाधि लीजिये। यानी सदैव श्रीकृष्ण की लीलाओं के ध्यान में डूब जाइये फिर दिव्य चक्षुओं द्वारा पूर्णरूप का दर्शन करके उन लीलाओं का सनातन रूप से जीवों की सनातन भलाई के लिये, विश्व कल्याण के लिए वर्णन कीजिये।

इस प्रकार अपने गुरु से शिक्षा पाकर और आशीर्वाद प्राप्त करके श्री व्यासजी ने पूर्णतया श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में अपने को समर्पण कर दिया। और गहरी ध्यान योग में एवं श्रीकृष्ण लीलाओं में प्रविष्ट हो गये। तब उनका हृदय पूर्णतया पवित्र हो गया। और भक्तियोग का अनुभवातीत अनुभव प्राप्त हो गया। उनमें श्रीकृष्ण की नाम, गुण, लीला, धाम एवं परिकरों का पूर्ण प्रकाशमय ज्ञान हो गया। उनको यह भी ज्ञान हो गया कि महामाया का क्या प्रभाव है ?

इस प्रकार के क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त होने के बाद श्री व्यासजी ने श्रीमद्भागवत की रचना की। हालांकि श्री व्यासदेव श्रीमद्भागवत को

इस प्रकार करने में स्वयं ही समर्थ थे परन्तु हम सांसारिक Fallen souls को समझाने के लिये उन्होंने श्रीनारद जी को गुरू मानकर शिक्षा ली।

श्रीमद्भागवत को समझने के लिये तथा रागानुगा भक्ति प्राप्त करने का वास्तविक गुरू की महान आवश्यकता है। क्योंकि श्रीमद्भागवत में श्रीराधा तत्व, गोपी तत्व को ऐसे गुरु के बिना न तो किसी ने समझा है न कोई समझ सकता है।

❀ धर्म का सत्य रूप ❀

संसार में प्रत्येक मानव की कोई भी क्रिया हो उसके पीछे एक लक्ष्य अवश्य होता है। बिना लक्ष्य के कोई क्रिया नहीं होती है। बहुत विचार करने के पश्चात् ऐसे निश्चय होता है कि जहां मानव तल्लीनता के साथ लगे रहते हैं उस तल्लीनता का लक्ष्य सबका एक ही है। अतः वह विश्व व्यापक लक्ष है क्या ?

किसी भी स्त्री या पुरुष से प्रश्न करने के बाद उनका उत्तर इस प्रकार तल्लीनता मय होने का एक ही मिलेगा कि "मैं अपने जीवन को सुखमय बनाने को ऐसी शान्ति (Peace) व प्रसन्नता (Happiness) चाहता हूँ (चाहती हूँ) कि जो शान्ति व प्रसन्नता कभी कम न हो। सदैव बनी रहे।

मानव इतिहास प्रमाण है कि अनन्त काल से प्रयास होते चले आ रहे हैं कि इस प्रकार की वांछित शान्ति व प्रसन्नता प्राप्त हो। परन्तु यह लक्ष्य अभी तक साधारणतया हाथ नहीं लग पाया है। अगर हृदयों का अवलोकन किया जाये तो ज्ञात होगा कि इस प्रकार की शान्ति व प्रसन्नता कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

तब, फिर तथा इस प्रकार की शान्ति व प्रसन्नता प्राप्त हो नहीं सकती ? नहीं, वास्तव में सदैव रहने वाली शान्ति व प्रसन्नता अवश्य-अवश्य उपलब्ध हो सकती है। तब क्या कारण है कि यह उपलब्धि नहीं होती है। कारण एकमात्र यह है कि इस प्रकार के सुख शान्ति को प्राप्त करने के गलत साधनों का प्रयोग किया जाता है।

सदैव सुख शान्ति तो आध्यात्मिक गुण (Spiritual Virtue) है। इसका माया से सम्बन्ध रत्ती भर भी नहीं है। यह गुण "मैं" और "मेरे" से परे है। सदैव रहने वाले सुख व शान्ति के लिये प्रयास जब तक जीव मन व शरीर से करता रहता है तो यही प्रयास का ढंग गलत है और भूल है हमारे कथित गुरु लोग भी यही बताते रहते हैं। **शरीर (इन्द्रियों) तथा मन से पवित्र व शुभ काम ही धार्मिक हैं।** परन्तु वास्तविक सुख व शान्ति की प्राप्ति इस स्तर पर कभी नहीं होती है।

वास्तविक भूल यह है कि "मैं" कौन हूँ ? इसका सत्य उत्तर हमारे पास है नहीं। मैंने अपने आप को (Real Self) ही मान रखा है कि यह शरीर एवं इन्द्रियां ही "मैं" हूँ। यह पंचभौतिक स्वरूप ही "मैं" हूँ। दूसरी भूल यह है कि इन पंचभौतिक शरीर की इन्द्रियों द्वारा किये हुये समस्त कर्म हमने प्रधान रूप से अपने कर्म समझ रखे हैं।

We have mistaken our material coils to be our proper selves and their godless activities to be our fundamental duties and religion and sensuous or mental pleasures to be the real peace and happiness. So we must correct as bllender of misidentification and misconception regarding our true selves true religion, true peace and happiness.

हमको अपने विषय में, सत्य धर्म के विषय में, सत्य शान्ति, सुख व प्रसन्नता के विषय में गलत फहमी (गलत समझ) को अवश्य दूर करना चाहिये तथा वास्तविक स्वरूप को समझना चाहिये। आज तक न तो कोई देवता, न राक्षस, न मानव, जो आध्यात्मिकता के विरुद्ध होकर या अधर्म्मी होकर, वास्तविक सुख व शान्ति प्राप्त नहीं कर सका है। संसार के इतिहास में इसका कोई उदाहरण नहीं है, परन्तु बाली, प्रह्लाद एवं विभीषण आदि भी वास्तविक शान्ति व सुख प्राप्त कर गये क्योंकि उन्होंने सत्य धर्म की शरण ली थी। जो सदैव ही कृष्ण-भक्ति में लीन रहते हैं वे ही वास्तविक नित्य सुख व शान्ति प्राप्त करने के अधिकारी हैं—अन्यथा नहीं।

अगर हम नित्य सुख व शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं तो हमको मानव जीवन और मानव देह प्राप्त करने की वास्तविकता को समझ लेना चाहिये और समझकर इस जीवन को सत्य में एवं सत्य धर्म में लगाना चाहिये।

श्रीकृष्ण प्राप्ति ही वास्तविक शान्ति एवं प्रसन्नता या सुख है। यह प्राप्ति निर्भर है केवल श्रीकृष्ण एवं उनमें वास्तविक भक्तों की अकारण कृपा पर। ऐसे भक्त श्रीकृष्ण के जीव को किस प्रकार प्राप्त हों ? यह प्रश्न एवं इसका उत्तर अपनी जगह पर बड़ा महत्व शाली है। वे बहुत कम जीव बड़े भाग्यवान् हैं जो ऐसे श्रीकृष्ण भक्तों के सम्पर्क में आते हैं।

माया वद्धित जीव जो १४ लोकों में भटक रहा है (भूः, भुवः, स्वः, महः, जन, तपः, सत्य, पाताल, अतल, वितल, रसातल, तलातल, महातल, सुतल) और बारम्बार जन्म-मृत्यु रोग में फँसा हुआ है, उसको श्रीकृष्ण भक्त का साथ करने का सौभाग्य जभी प्राप्त होता है, जब उसके पूर्व संस्कार उस समय उदित होते हैं जबकि उनका Redemption का समय आता है यानी माया से छुटकारा पाकर श्रीकृष्ण प्राप्ति का समय आता है।

किस कारण से जीव को ऐसे महान पवित्र साधु भक्त से मिलन होता है और ऐसा कौन सा कारण है कि उस जीव का ऐसे साधु भक्त के शब्दों में अटूट विश्वास होता है। इसका कारण जीव के गुण (Merits) और दोष (Demerits) ही हैं। ये गुण और दोष पाप पुण्य जैसी वस्तु नहीं हैं। सांसारिक पाप और पुण्य (Hundane Sin or Virtue) जो मायाकृत हैं (Performed by Maya) कभी किसी जीवको ऐसी योग्यता प्रदान नहीं करते हैं जिनके द्वारा वह जीव वास्तविक पवित्र साधु भक्त (Saint) या गुरु का साथ प्राप्त कर ले।

जीव की एक सुकीर्ति (आध्यात्मिक गुण Spiritual Virtue) ही है जो कि पवित्र साधु भक्त का संग करा सकती है। पंचभौतिक शरीरों यानी इन्द्रियों के साथ अन्याय करना ही पाप है क्योंकि इन पंचभौतिक शरीरों एवं इन्द्रियों का आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। पुण्य कर्म (सांसारिक भले काम) जो हमारे शरीर एवं इन्द्रियों द्वारा होते हैं हमारी सांसारिक स्थिति में उन्नति करते हैं। पापों का फल हमको यहाँ भोगना पड़ता है। और मृत्यु के बाद भी भोगना पड़ता है। पुण्य कर्म इसी जन्म में हमको भौतिक आनन्द (Material Enjoyments) देते हैं और कभी-कभी हमारे लिये स्वर्ग में भी सुख की व्यवस्था करते हैं। जिस प्रकार जीव को अपने पापों के कारण नर्क में अति कठिन कष्टों को भोगना पड़ता है और अपने अधिक पापों के कारण जीव को फिर इस संसार में अनेक योनियों में जन्म लेना पड़ता है। उसी प्रकार जब जीव के पुण्य कर्मों के फलों का अन्त हो जाता है तो फिर स्वर्ग से आकर इसी संसार में फिर जन्म लेना पड़ता है। अति अधिक पुण्यों का एकत्रित होना स्वर्ग में उच्च स्थान प्राप्त कराता है परन्तु उन पुण्य फलों को समाप्ति के बाद जीवों को फिर संसार में आकर जन्म लेना पड़ता है। अतः इन पाप व पुण्यों का सम्बन्ध किसी भी प्रकार आत्मा से नहीं है।

शास्त्रों के अनुसार सुकीर्ति भी तीन प्रकार की है।

(१) कर्मेणि मुखी सुकीर्ति-यानी कर्म मार्ग युक्त (The way of Action)

(२) ज्ञानेन मुखी (श्रीकृष्ण विषय में ज्ञान प्राप्ति)

(३) भक्तिनि मुखी-जो हृदय में प्रबल इच्छा पैदा करती है कि श्रीकृष्ण की प्रेममयी सेवा की जावे (आत्मा का यही) (Inherent function) आत्मा का अटूट एवं प्रथम न होने वाला काम।

संस्कारों का प्रभाव (The Influence of Arrociations) अब प्रश्न यह है कि सुकीर्ति किस प्रकार प्राप्त हो ?

जब कोई जीव जान-बूझकर या अनजाने, सीधे-सीधे या उल्टे-पुल्टे ढंग से श्रीकृष्ण की सेवा करने का अवसर प्राप्तकर लेता है या बिना चाहे भी जब कभी उसे ऐसा अवसर प्राप्त हो जाता है तब यह अवस्था उस जीव की भक्ति अंग मुखी सुकीर्ति या भक्ति सुकीर्ति ही मानी जाती है। यह सेवा चाहे श्रीकृष्ण की सीधी हो या उसके परिकर (Indirect) की सेवा हो। उदाहरण के लिये:—

एक आदमी स्वभाव से ही बड़ा दानी प्रसिद्ध है। एक दिन एक पवित्र साधु (Pure saint) उस आदमी के यहाँ पहुँच गया। वहां उस साधु की इच्छानुकूल उस आदमी ने बड़ा सत्कार व सेवा की। इस अवस्था में जो सेवा उस साधु की हुई वह किसी भी प्रकार से पुण्य कर्म की गणना में नहीं आती है क्योंकि धनी ने कृष्ण भक्त की सेवा की है वह भी केवल कृष्ण सेवा भावना से पुण्य कर्म का फल तो नाशवान् है, अस्थिर (Temporary) है। यह सेवा उस (Saint) साधु की भी नाश नहीं होगी क्योंकि यह Spiritual Action है आध्यात्मिक क्रिया है यद्यपि यह सेवा यह बिना समझे किया गया है कि यह आध्यात्मिक क्रिया है। इसका फल तो आत्मा का नित्य फल है न कि इन्द्रियों का। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है:—

एक दिन एक व्यक्ति का उसकी पत्नी व घरवालों से ऐसा झगड़ा हुआ कि उस दिन व उस रात को न तो कुछ खाया न एक बूँद भी जल पिया। बिना ही समझे-बूझे उसका निर्जला व्रत हो गया। भाग्यवश उस दिन एकादशी (श्रीकृष्ण का दिन) थी। यह व्रत बिना इरादे के किया गया था। यह व्रत उसका एक सुदृढ़ सुकीर्ति बन गया। जब जीव की इस प्रकार की सुकीर्ति इस जन्म की अन्य जन्मों की एकत्रित होती है तब

उसके अन्दर एक महान् प्रबल इच्छा एक (Pure saint) साधु का साथ प्राप्त करने की होती है। उसी समय श्रीकृष्ण जो हर जीव के हृदय में वास करते हैं उस जीव की प्रार्थना को स्वीकार करते हुये अपने भक्त का साथ जीव को करा देते हैं।

एक पवित्र गृही भक्त अपने पुत्र-पौत्रों आदि के लिये कोई भी आध्यात्मिक दान नहीं करते हैं चाहे ये लोग उनसे पंच भौतिक शरीर की कितनी ही सेवा करें परन्तु यही गृह भक्त उस जीव की स्वसुखगंध रहित सेवा करते हैं। सुकीर्ति प्रदान करते हैं और वे श्रीकृष्ण के आदेश से ही ऐसा करते हैं।

अन्य दो प्रकार की सुकीर्ति प्रायः साधारण तथा साधारण पुण्य कर्म के बराबर हैं वे भी जाने अनजाने कर्मियों के सम्पर्क में निगुणोपासक सन्तों के सम्पर्क में आकर ये पुण्य कर्मी की व्यवस्था रूप बन कर रह जाती है।

अतः पवित्र भक्त-साधु चाहे गृही ही हों क्या इस संसार में अत्यन्त अभाव हो गया है। बहुदा लोगों का कहना है कि भारत में अनेकों लोग देवी व देवताओं के भक्त हैं। उनकी भक्ति करते हैं। परन्तु ये भक्ति केवल उनकी सांसारिक वासनाओं की पूर्ति के लिये ही है। अतः प्रेमाभक्ति प्राप्त करने के लिये श्रीकृष्ण किसी ऐसे जीव में प्रवेश करते हैं जो संसार में बिना स्वार्थ-जाति तथा देश-विदेश का भेद न करके श्रीकृष्ण की प्रेमा-भक्ति प्रदान करते हैं।

❀ सम्बन्ध ज्ञान अभिधेय प्रयोजन ❀

★

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरत श्चर्थिष्वभिज्ञः स्वराट्।
तेने ब्रह्म हृदा य आदि कवये - मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमदां यथा विनिमयो - यत्र त्रिसर्गोऽमृषा।
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं - सत्यं परं धीमहि॥ १॥

जिससे इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं। क्योंकि वह सभी सद्रूप पदार्थों में अनुगत है और असत् पदार्थों से पृथक् है। जड़ नहीं, चेतन है, परतन्त्र नहीं स्वयं प्रकाश है, जो ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं प्रत्युत उन्हें अपने संकल्प स ही जिसने उस वेद ज्ञान का दान किया है, जिसके सम्बन्ध में बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं, जैसे तेजोमय सूर्य रश्मियों का जल में, जल में थल का, और स्थल में जल का भ्रम होता है। वैसे ही जिससे यह त्रिगुणमयी जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति रूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी अधिष्ठान सत्ता से सत्यवत् प्रतीत होती है, उस अपनी स्वयं प्रकाश ज्योति से सर्वदा और सर्वथा माया और माया-कार्य से पूर्णतः मुक्त रहने वाले परम सत्य स्वरूप परमात्मा का हम ध्यान करते हैं।

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो - निर्मत्सराणां सतां।
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं - तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनि कृते किं वा परैरीश्वरः।
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्।
निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतंद्रवसंयुतम्॥

महामुनि व्यासदेव जी द्वारा निर्मित इस श्रीमद्भागवत महापुराण में मोक्ष पर्यन्त फल की कामना रहित परम धर्म का निरूपण हुआ है। इसमें शुद्धान्तःकरण सत्पुरुषों के जानने योग्य उस वास्तविक वस्तु परमात्मा का निरूपण हुआ है, जो तीनों तापों का जड़ से नाश करने वाली और परम कल्याण देने वाली है। अब किसी और साधना या शास्त्र

से क्या प्रयोजन। जिस समय भी **सुकृती पुरुष** इसके श्रवण की इच्छा करते हैं, ईश्वर उसी समय अविलम्ब उनके हृदय में जाकर बन्दी बन जाता है। धर्माचरण (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) करने वाले—पुण्य करने वालों के हृदय में नहीं आते हैं।

निगम कल्पतरोर्गलितं फलं, शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं, मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥३॥

रस के मर्मज्ञ भक्तजन! यह श्रीमद्भागवत वेद रूप कल्पवृक्ष का पका हुआ फल है। श्रीशुकदेव रूप तोते के मुख का सम्बन्ध हो जाने से यह परमानन्दमयी सुधा से परिपूर्ण हो गया है। इस फल में छिलका गुठली आदि त्याज्य अंश तनिक भी नहीं है। यह मूर्त्तिमान रस है। जब तक शरीर में चेतना रहे, तब तक इस दिव्य भागवत रस का निरन्तर बार-बार पान करते रहो। "यह पृथ्वी पर ही सुलभ है।"

द्वारिका महिषीगणों के समस्त क्लेशों का निवारण श्रीमद्भागवत के श्रवण द्वारा हुआ था। यह श्रवण श्री उद्धव जी ने प्रकट होकर (वज्र-नाभ के प्रेम वश) कुसुम सरोवर पर क्वार सुदी एकादशी से कार्तिक सुदी एकादशी तक केवल १० वां स्कन्ध पूर्वार्ध कराया था। इसमें सिवा १६१०८ के कोई अन्य श्रोता नहीं था क्योंकि यह कथा केवल पंचम पुरुषार्थ की ही थी॥

राधा दासी बनने से पूर्व श्रीराधा को भले प्रकार समझ लेना चाहिये।

"राधा-शब्द" की व्युत्पत्ति सामवेद में निरूपण की गई। यह श्रीराधा जी भी देवता—राक्षस, मुनियों को परम वांछित मोक्ष को देने वाली हैं। राधा शब्द का "र" कार कोटि-कोटि जन्मों के शुभ-अशुभ कर्म भोगों से और "आ" कार गर्भवास रोग और मृत्यु से छुड़ाता है। "ध" कार आयुष्य की हानि से और "आ" कार कहने सुनाने से भव-बन्धन से छुड़ाता है। श्रीकृष्ण चरणारविन्द में सर्व वांछित सदानन्द-दायक सर्वसिद्धि ऐश्वर्य युक्त दास्यता एवं शरणागति प्रदान करता है। "ध" कार अनन्त काल तक स्वयं श्रीकृष्ण का सहवास एवं सारूप्य तथा तत्व ज्ञान प्रदान करता है। "अ" कार अमित तेज, दान की शक्ति, योग की शक्ति एवं योग की मति—सब काल में हरि स्मरण कराता है।

योगमाया परा प्रकृति रूपा श्रीराधा-श्रीकृष्ण की प्राणप्रिया होने के कारण ही इन श्रीराधा का नाम पुरुष रूप परमात्मा श्रीकृष्ण के साथ लगा हुआ है। अतः एक राधा नाम ही सदैव जिह्वा पर रहना चाहिये।

सम्बन्ध ज्ञान

श्रीमद्भागवत के तीन श्लोक यहां दिये गये हैं। उन श्रीकृष्ण से रसिक भक्त ही सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं (अन्य कोई नहीं) अतः श्रीकृष्ण से सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व रसिक भक्त को अपना पूर्ण ज्ञान होना चाहिये (True Knowledge of self) नतो यह रसिकभक्त पंच-भौतिक इन्द्रियां है (यानी शरीर एवं मन भी नहीं है) जब इसका ज्ञान हो जावे तब प्रश्न उठता है कि श्रीकृष्ण के साथ रसिक भक्त का क्या सम्बन्ध होना चाहिये।

मानव जीवन के लिये दिन प्रतिदिन भिन्न-भिन्न प्रकार के ढंग तरीके (Manner) और भिन्न-भिन्न प्रकार के लक्ष्य (Goals) बढ़ते चले जा रहे हैं। इन साधनों तथा लक्ष्यों पर ढेरों ग्रन्थ योग्य से योग्य व्यक्तियों द्वारा लिखे जा चुके हैं और लिखे जा रहे हैं। इसका कारण केवल एक है। कि हमको अपने बारे में भ्रम है (Misunderstanding of our true selves in the good cause of diverse pathes and goals.

शास्त्रों का वास्तविक आशय न समझने के कारण ही एक भिन्नता है। शास्त्रों का सही तत्व न समझा जा सका है।

श्रीकृष्ण ने जीवों की स्वतंत्र इच्छाशक्ति (Free will) दी है। ताकि उसका उत्तमोत्तम लाभ उठाया जावे। चूँकि हमने इस शक्ति का गलत प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है तो हम अपने सत्य स्वभाव (True Nature) सत्य कर्म (True Function) को भूल गये हैं और हम अपने कर्त्ता (doers Enjoyers) आदि मानने लगे हैं। हमें यह भी स्मरण नहीं रहा कि हम (जीव) श्रीकृष्ण के नित्य दास हैं। इसका स्मरण सदैव रहना साधक का प्रथम गुण है। अतः दीनता को खोकर हम सच्चे भक्त को भी समर्पण नहीं कर सकते हैं। हम संसार की अनेकों वस्तुओं को समझते हैं। उनका ज्ञान रखते हैं। तब हम विचार करते हैं कि हम ईश्वर सम्बन्धी सत्यता को भी समझ सकते हैं। शास्त्र एवं धर्म ग्रन्थों में जो कुछ भी लिखा है उसे भी अपने आप समझ सकते हैं। क्योंकि जिन भाषाओं में ये ग्रन्थ लिखे हैं उनके तो हम पंडित हैं।

हमने जो अपनी इन्द्रियों द्वारा सीमा वद्धित ज्ञान प्राप्त किया है। उसके द्वारा हम अपनी अयोग्यता को कभी स्वीकार नहीं करते हैं कि हम उन बातों को समझ नहीं सकते हैं जो मानव कल्पना व मानव बुद्धि से परे हैं। यानी अनुभवातीत अनुभव की बातों को समझने को हर दम, दम भरते हैं—

जब हम अपने पार्थिव शरीर को ही अपनी आत्मा समझते हैं तो हम सब काम स्वार्थ भरे ही करते हैं ताकि हम इन्द्रियों को भोग दे सकें।

जब हम मन (Mind) को ही अपना आत्मा समझते हैं तो वह मन अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर सांसारिक ज्ञान प्राप्त करता है। हम मन के कल्पना करने वाले बन जाते हैं। तब इसका प्रभाव यह होता है कि सत्यता के विषय में नकारात्मक विचार ही प्राप्त होते हैं (Negative idea of truth) ही कल्पना द्वारा प्राप्त होता है।

परन्तु जो भाग्यशाली हैं वह यह समझते हैं कि जीवात्मा तो श्रीकृष्ण का नित्य दास है। न तो इसका जन्म होता है, न मृत्यु होती है, न कोई शक्ति इसका नाश कर सकती है। जो यह समझते हैं कि जीव को श्रीकृष्ण की प्रेममयी सेवा करनी चाहिये। पूर्ण शान्ति सदैव की शान्ति उन्हीं को प्राप्त हो सकती है जो यह जानते हैं कि श्रीकृष्ण उनके हृदय में विराजमान हैं जीवात्मा तथा श्रीकृष्ण आपस में सम्बन्धित हैं (प्रेमी-प्रेमिका का रूप) जीवात्मा का प्रधान काम यह है कि श्रीकृष्ण की प्रेम-मयी सेवा करे और श्रीकृष्ण से कुछ भी न चाहे।

जो जीव उन श्रीकृष्ण की अनुभवातीत अनुभवों वाली इन्द्रियों की जितनी सेवा करता है। उनको जितना सुख पहुँचाता है परन्तु निज सुख या स्वार्थ की भावना का नितान्त लोप रखता है। इस प्रकार की सेवा ही उस जीव का मूल्यांकन करती है। जब इस प्रकार की सेवा में स्वार्थ की भावना जीव में प्रवेश कर जाती है तब वह जीव नीचे गिरता हुआ चला जाता है पाखण्ड रोग से ग्रसित होता जाता है। यही जीव की आध्यात्मिक मृत्यु है।

श्री वेदव्यास जी ने बताया है कि ऐसा जीवन आध्यात्मिक रोगी जीवन व पाखंडी जीवन है जिसमें **धार्मिक कामों में, साधना में, पवित्रता में, तपस्या में**, स्वार्थ की भावना मिली हुई है यानी ये साधना उच्च-कोटि की भी होते हुये अगर स्वार्थमयी है तो श्रीमद्भागवत के अनुसार ये

पाखंडमयी है। शारीरिक स्वार्थ या मानसिक स्वार्थ किसी भी प्रकार का क्यों न हो जब प्रेममयी सेवा में प्रवेश कर जाता है तब इस समस्त क्रिया को पाखण्ड ही कहा जाता है यह पाखण्ड या स्वार्थता चार प्रकार की है।

१—धर्म (The desire for Dharm) (Piety)
२—अर्थ (Money)
३—काम (Satisfaction of sences) इन्द्रिय भोग
४—मोक्ष (self-satisfaction in salvation or emencipation)

ये चार प्रकार के रोग ढोंग कहलाते हैं क्योंकि चारों में श्रीकृष्ण सेवा का प्रश्न ही नहीं है। धर्माचरण—धर्म से धन की प्राप्ति होती है। जिससे इन्द्रियों के सुख की वृद्धि होती है। इन तीनों में पाखण्ड का पता लग जाता है। परन्तु चौथी बात 'मोक्ष' जहाँ अपनी आत्मा की सन्तुष्टि की 'इच्छा' रहती है जो मोक्ष में प्राप्त होती है वहां पाखण्ड का पता लगाना कठिन हो पाता है। क्योंकि सांसारिक भवरोगों से छुटकारा पाने की इच्छा-भावना ही पाखंड है। क्योंकि मोक्ष प्राप्ति में इच्छा-कामना बनी रही। पाखण्ड है। रागानुगा भक्ति में सम्बन्ध ज्ञान। अभिधेय यानी प्रेममयी सेवा का ढंग एवं प्रयोजन तत्वांश में एक ही हैं। ये तीनों Single minded devotion एकाग्रता पूर्ण भक्ति में ही केन्द्रित हैं। अविकसित तथा अधूरे स्तर पर ही ethod (अभिधेय) कहलाता है और कृष्ण को पूर्ण प्राप्ति पर ही यही Mathod (अभिधेय) अन्त या प्रयोजन हो जाता है।

समस्त अन्तिम लक्ष वेदों में निहित है। अत: इसे कल्पवृक्ष (Spiritual purpose tree) कहते हैं। जिसका पूर्ण पका हुआ फल श्रीमद्भागवत है। जो फल वृक्ष से उतरता है। यह अपने आप फल निकलता है। वृक्ष से गिरता है। कोई अन्य शक्ति इस फल को नहीं गिरा सकती है (Complete Deductive Method) है।

इस वृक्ष से जब फल गिरता है तो गिरने से फल को कोई क्षति नहीं होती है। यह फल शाखा से शाखा पर आसानी से खिसकता हुआ आता है। क्योंकि सदैव ही रहने वाली गुरु परम्परा द्वारा इसकी पूर्णतया रक्षा होती है। श्री नारायण से ब्रह्मा। श्री ब्रह्मा से श्रीनारद। श्रीनारद से श्री व्यासदेव—श्री व्यासदेव से श्री शुकदेव—श्री शुकदेव से श्री सूत जी।

इसी प्रकार से यह फल पिया जाता है। चबाया नहीं जाता क्योंकि इस फल में अमृत रस भरा हुआ है जिसमें न Skin है न Seed न छिलका है न बीज। जब श्रीशुकदेव जी ने इस फल को चख लिया तो यह और स्वादिष्ट हो गया। इस फल का चाखना ही मानव का प्रथम तथा अन्तिम लक्ष है।

अत: इस फल के रस को पिये जाओ। भले ही मोक्ष प्राप्त हो गई हो। तब तक पियो जब तक इस रस के मद में पूर्णतया अचेतन न हो जाओ। यानी पूर्ण श्रद्धा व प्रेम से गुरु द्वारा श्रीमद्भागवत का श्रवण करो, पाठ करो, यही मानव का अन्तिम लक्ष्य है।

इस पके फल का मतलब है "रस"—वेदों का रस, यह बिना बीज व छिलका के फल का मतलब है कि यह केवल कर्मकाण्ड व ज्ञान काण्ड का ही तत्व नहीं है जो छिलका और बीज के समान हैं। बल्कि आध्यात्मिक प्रेम से पूर्णतया भरा हुआ है (प्रेमाभक्ति ही यह रस है) क्योंकि श्रीकृष्ण ही आध्यात्मिक रस (प्रेमा भक्ति) का पूर्ण अवतार हैं।

रस या आध्यात्मिक भावनायें बारह (१२) प्रकार की हैं उनमें से पांच मुख्य हैं बाकी सात सहायक हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। अपने में ही पूर्ण संतुष्ट हैं, तो भी वे पूर्ण लीलामय हैं। वे अपने नित्य परिकरों के साथ क्रीड़ा में आनन्द लेते हैं। अपनी योगमाया के माध्यम से वे क्रीड़ा करते हैं।

अत: श्रीमद्भागवत के प्रथम तीन श्लोकों में श्री वेदव्यास जी ने श्रीकृष्ण का ही सम्बन्ध ज्ञान (object of our Knowledge of our relation ship) श्रीकृष्ण भक्ति (प्रेमा भक्ति) ही उत्तमोत्तम साधन (अभिधेय) और प्रेममयी स्वसुखगंध रहित सेवा ही अन्तिम लक्ष्य या प्रयोजन स्थापित किया है। यही बात श्रीमद्भागवत में १८००० श्लोकों में प्रतिपादित की है।

❀ श्रीकृष्णचैतन्य शिक्षामृत ❀

❀

श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षायें भागवत धर्म हैं। इन शिक्षाओं में साधक के लिये किंचित् मात्र भी किसी प्रकार का फल प्राप्त करने का दुःसाहस नहीं करना है। हरिनाम उच्चारण एवं स्मरण के फल को प्राप्त करने की साधक कभी कल्पना भी नहीं करता है परन्तु तो भी नाम स्मरण करने वाले को बिना मांगे बिना जाने सात प्रकार के फल प्राप्त होते हैं।

१—हरिनाम स्मरण का प्रथम फल यह है कि साधक का हृदय पूर्णतया पवित्र हो जाता है। जिस दर्पण में धूल का तंगडा पर्त्त लगा हो उसमें चेहरा कभी भी स्पष्ट नहीं दीखता है। हालांकि शीशे में प्रतिबिम्ब दर्शन की पूर्ण क्षमता है। जैसे ही धूल व मिट्टी का पर्त्त रगड़ के हटा दिया जाता है चेहरा स्पष्ट दिखाई देता है। आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से है। माया की जंजीरों से बँधा रहने के कारण उसमें प्रेम की वृत्ति नहीं रहती है क्योंकि वासनाओं के इन्द्रियों के भागों के धूलरूपी पर्त्त जन्म-जन्मान्तरों के लगे हुये हैं जिसके कारण हृदय अपवित्र रहता है क्योंकि इस वासनाओं का स्थान हृदय है।

हरिनाम स्मरण, गायन, जब प्रेम से किया जाता है तो हृदय रूपी दर्पण से वासना रूपी धूल मिट्टी के पर्त्त हटते चले जाते हैं और हृदय परम पवित्र होता जाता है। जन्म-जन्मान्तरों की एकत्रित वासना पुन्जों का नाश हो जाता है। हमारे हृदय पूर्णतया पवित्र हो जाते हैं।

हृदय की पवित्रता प्राप्त करने के लिये योगीजन महान् कठिनाइयों को सहन करके तपस्यामय जीवन बिताते हैं परन्तु फिर भी हृदय की पवित्रता पाना प्रायः दुर्लभ ही रहती है। परन्तु हरि नाम जिह्वा के टोंने पर आते ही हृदय को आध्यात्मिकता प्रदान करता है और उसे पारदर्शी (Transparent) बना देता है इससे पवित्रता ही नहीं श्रीकृष्ण की हृदय में उपस्थिति की झलक साधक को प्राप्त होती है।

श्री महाप्रभु गौरांग जी की ऐसी कृपा जीव पर है कि श्रीकृष्ण प्राप्ति का कैसा सरल ढंग उपलब्ध कर दिया है।

२—हरिनाम स्मरण से जन्म-मृत्यु की महान् भयंकर अग्नि सदैव के लिये शान्त हो जाती है और तीनों प्रकार के ताप दैहिक, दैविक, एवं भौतिक तो नष्ट हो ही जाते हैं साथ ही अविद्या (श्रीकृष्ण विस्मरण) का नाश हो जाता है। अब साधक को क्या चाहिये ? यह दूसरी उपलब्धि है।

३—तीसरी उपलब्धि आत्मा के नित्य सुखरूपी पुण्य में चार-चाँद और लग जाते हैं अर्थात् नित्य सुख की प्राप्ति स्थिरता को प्राप्त होती है।

४—श्रीकृष्ण (वास्तविक ज्ञान के जीवन) के चरण युगलों की सेवा प्राप्त होना यह चौथी उपलब्धि है। अहा ! यह तो महान् चमत्कार है। ओ, जीव ! योगियों तथा चमत्कार दिखाने वालों के चक्कर को छोड़कर हरिनाम ले !

हरि बोल ! हरि बोल !! हरि बोल !!!

५—साधक के हृदय में श्रीकृष्ण प्रेमानन्द के समुद्र में गोता लगाने की उत्कंठा में वृद्धि होना पांचवीं उपलब्धि है। श्रीकृष्ण आनन्द स्वरूप हैं। श्रीराधिका प्रेममूर्त्ति हैं। नाम स्मरण से अन्तःपटल पर प्रेमानन्द नाचने लगता है।

६—श्रीकृष्ण नाम उच्चारण से हर नाम उच्चारण पर अमृत रूपी आनन्द का आस्वादन होता है। यानी प्रति नाम उच्चारण करने से अमृत तुल्य चसका लगता है। यह छटवीं उपलब्धि है।

७—सातवीं उपलब्धि : यह श्रीकृष्ण नाम लेने वाले जीव श्रीकृष्ण-प्रेमरूपी समुद्र में पूर्णतया स्नान करते हैं। उसी प्रेम समुद्र में बहते चले जाते हैं।

अनुभवातीत प्रेम (Transcendental Love) को जीव पूर्णतया अनुभव करता रहता है। श्रीकृष्ण नाम पवित्र से पवित्र है। इससे पवित्र अन्य वस्तु है ही नहीं। श्रीकृष्ण भी अपने नाम की समता रखते दिखाई नहीं देते हैं। तभी सब को नाम उच्चारण का आदेश देते हैं। साध्वी पत्नी अपने पति का नाम नहीं लेती है परन्तु श्रीकृष्ण की साध्वी पत्नियां (गोपी-भाव रूपी राधा दासी) को श्रीकृष्ण अपना (पति) का नाम लेने का आदेश दे रहे हैं।

अब एक प्रश्न उठता है कि अनेकों जीव नाम उच्चारण करते है। कीर्त्तन करते हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश को ऊपर बतायी गई सात उपलब्धियों में से एक भी उपलब्धि प्राप्त नहीं होती है। ऐसा होने पर उनकी श्रद्धा गुरूओं तथा भक्ति शास्त्र के बताने वाली विभूतियों से खिसकती जाती है और अनेकों को ऐसा कहते हुये सुना जाता है कि वास्तव में इस क्रिया में कोई लाभ नहीं है। इससे अच्छी बात तो इस भक्त ने लिखी है। देखो इस कविता में कितना आनन्द आ रहा है। देखो! इस प्रवचन में कैसा मजा आया। यानी उसका ध्यान रस से हटकर छूँछ पर चला जाता है। ऐसा क्यों? नाम उच्चारण करने वालों के हृदय भी पवित्र नहीं होते हैं यानी प्रथम उपलब्धि भी प्राप्त नहीं होती है क्यों?

मैं आपका ध्यान श्रीकृष्णचैतन्य जी की तीसरी शिक्षा की ओर कराऊँ जिसमें नाम स्मरण करने वाले साधक की योग्यता का वर्णन है। एक फैक्टरी के मैनेजर के पद पर जिसके लिये योग्यतायें निर्धारित हैं एक ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति की जाती है जिसमें निर्धारित योग्यताओं में से कोई भी नहीं है। फलतः वह मैनेजर फैक्टरी का सत्यानाश ही कर देता है। इसी प्रकार हरि नाम लेने के लिये महाप्रभु जी ने योग्यता निर्धारित की हैं। उन योग्यताओं का प्राप्त करना एक महान् तपस्या है। उनके बिना सातों फलों में से कोई फल प्राप्त नहीं हो सकता है। प्रथम योग्यता यह है कि साधक को अपने आप को तिनके से भी छोटा समझना चाहिये। यानी उच्च कोटि की दैन्यता प्राप्त जहाँ अहं का नाम न हो। दूसरी योग्यता है—अपने आप को वृक्ष से अधिक सहनशील होना चाहिये जो दूसरों के हित में अपने आप को मिटा देता है परन्तु आह नहीं करता। तीसरी बात यह है कि उन सबका आदर करना चाहिये जो कभी भी आदर के योग्य नहीं हैं तथा चौथी योग्यता यह है कि अपने लिये मान व आदर का भाव भी नहीं आना चाहिये। दूसरों का निरादर करना परमात्मा का निरादर है।

अतः कीर्त्तन, नाम स्मरण से पूर्व बताई हुई चारों योग्यताओं को प्राप्त करना चाहिये। यह है मानव की वास्तविक तपस्या इसके के बाद ही जीव नाम स्मरण व कीर्त्तन करने का अधिकारी उन ७ फलों के प्राप्त करने के लिये होता है।

कीर्त्तन मण्डली में बैठे हुये साधक चाहे वे किसी श्रेणी या कोटि में हो, महात्मा हों, या गृहस्थी हों, किसी को भी मान प्राप्त करने की

ओर सोचना भी नहीं चाहिये। बल्कि साधु महात्माओं को तो अपने इस प्रकार के आचरण से बड़ा सावधान रहना चाहिये न कि मान व आदर पाने की चिन्ता करें। यह विषय भी बड़ा गहरा है तथा उस कठिन तपस्या का प्रमुख अङ्ग है। नाम लेने वाले, गायन करने वाले, एवं कीर्त्तन करने वाले साधकों को न तो धन प्राप्ति की भावना रखनी चाहिये कि हम अमुक के यहां कीर्त्तन करने आये हैं तो धन मिलेगा। स्वादिष्ट भोजन मिलेंगे, वस्त्र मिलेंगे, यश मिलेगा, मान मिलेगा। किसी भी प्रकार की सांसारिक कामना नहीं करनी चाहिये। यहां तक है कि मोक्ष प्राप्ति की कामना भी कीर्त्तन में नहीं रखनी चाहिये। एक बात साधक के चित्त में रहे कि मुझे युगल चरण की सेवा प्राप्त हो।

* श्रीकृष्ण चैतन्य एवं तत्व ज्ञान *

साधक को महाप्रभु कृत तत्व को समझना अति आवश्यक है। वेदों, उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र, एवं पुराणों में आध्यात्मिक तत्व के बारे में बहुत कुछ प्राप्य है। उनमें भी भिन्न-भिन्न विचारधारायें मिलती हैं उसी के अनुसार ज्ञानी लोग, पण्डित, सन्यासी, प्रवचन कर्त्ता, एवं साधु-महात्मा, जीवों को सगुण, निर्गुण उपासना का विवेचन तथा उपदेश करते चले आ रहे हैं। परन्तु वास्तविकता से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता है। परमात्मा का जीवात्मा से क्या सम्बन्ध है इस बारे में समस्त शास्त्रों को संगत करके सम्बन्ध जानना पड़ेगा।

१—भगवान् या ब्रह्म का जीवात्मा के साथ अभेद रूप।

२—भगवान् का जीवात्मा से भेद रूप।

* यानी अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त *

जीवात्मा परमात्मा का अंश है (ईश्वर अंश जीव अविनाशी) यानी इनमें भेद नहीं है। उदाहरण के लिये सूर्य की किरणें सूर्य से प्रथक् नहीं है। इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा से प्रथक् नहीं है। परन्तु सूर्य की किरणें सूर्य नहीं हैं। सूर्य, सूर्य की किरणें नहीं है। अतः जीवात्मा, परमात्मा नहीं हो सकता है। परमात्मा, जीवात्मा नहीं हो सकता है। यही भेद है। जीवात्मा की स्वतंत्रता अणुमात्र है। अणुशक्ति है। परमात्मा पूर्ण स्वतन्त्र है। पूर्ण शक्तिवान् है। यही श्रीचैतन्य जी का अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त है।

किसी भी भक्ति शास्त्र में इस सिद्धान्त की प्रतिकूलता नहीं पाई जाती है। केवल माया बद्धित विद्वानों को समझ की भूल है कि कुछ लोग इन शास्त्रों के प्रतिकूल मानते हैं।

श्रीकृष्ण चैतन्य का अवतरण कलियुग में गुप्त ही रहा है। भक्ति-शास्त्रों में खुलकर यह विवरण प्राप्त नहीं है। परन्तु महाभारत व श्रीमद्भागवत में श्री व्यास जी लिखते हैं महाभारत–"कलियुग में श्रीकृष्ण प्रकट होंगे। उनका रंग सुवर्ण के समान गौर होगा। उनकी मूर्त्ति अत्यन्त सुन्दर, महान् से महान् आकर्षक होगी। चन्दन-चर्चित शरीर होगा। चन्दन चर्चित मालायें पहिनेंगे, और वे सन्यास को भी धारण करेंगे। श्री वेदव्यास जी श्रीमद्भागवत में कहते हैं,—"ये अवतारी सदैव कृष्ण नाम उच्चारण करते रहेंगे। इनका रंग गौर तपे-तपाये सुवर्ण के समान होगा। जो अपने परिकरों के साथ सदैव रहेंगे। वास्तविक बुद्धिमान् जीव ही हरिनाम उच्चारण करते हुये उनकी पूजा करेंगे।"

धर्म या श्रीकृष्ण प्रेम पूर्णतया भक्ति में ही विकसित होता है। यह युगल सरकार के चरणारविन्दों में समर्पण से ही प्राप्त होगा। समर्पण भी प्रेमपूर्वक स्वार्थ-रहित होना केवल 'हरिनाम' लेने से ही होता है। अतः सत्य दृष्टि से भक्ति को मानने वाला, विश्वास करने वाला जीव महान् कठिनाई से ही मिल सकता है यानी भक्ति करना महान् कठिन काम है। कठिन से कठिन है। श्रीकृष्णरत भक्त चाहे गृही चाहे साधु महात्मा का मिलना अति कठिन है। क्योंकि श्रीकृष्ण भक्त वही होगा जिसने श्रीकृष्ण नाम को सर्व शक्तिमान् मानकर उसी में शरण ले ली है। कृष्ण नाम का शरणागत हो गया है। ऐसा भक्त नामापराध न करके पवित्र प्रेम में डूबा रहता है तथा स्वार्थ परता तो उसे छू तक नहीं सकती है। यही कारण है कि भूतल पर कृष्ण भक्त बड़ी कठिनाई से ही प्राप्त होते हैं। अतः सर्व शक्तिमान् वस्तु **श्रीकृष्ण नाम** हुआ।

माता देवहूति भगवान् कपिलदेव से कहती हैं। "हे भगवान्! अत्यन्त आश्चर्य जनक शक्ति एवं महानता उन लोगों की है जो आपके नाम का कीर्त्तन, गायन, स्मरण करते हैं। जिनको जिह्वा के टोंने पर आपका नाम नाचता रहता है। ऐसा साधक-भक्त चाहे वह गृही हो या साधु या सन्यासी समस्त पवित्र जीवों में महान् पवित्र है, भले ही श्वपच परिवार में जन्मा हो। ऐसे जीव ने समस्त तपस्यायें पूर्ण करते हुये

ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लिया है। ("केवल नाम" द्वारा) उसने समस्त त्याग बिना त्याग किये ही कर लिये। बिना ब्राह्मण कुल में जन्म लिये ब्राह्मण हो गया। समस्त पवित्र से पवित्र नदियों एवं सरोवरों में बिना स्नान किये स्नान कर लिया। बिना पढ़े ही समस्त वेदों का अध्ययन कर लिया। यानी निस्वार्थ भाव से प्रेमपूर्वक 'नाम' लेने का यह प्रभाव है। जीवे दया, नामे रुचि, वैष्णव सेवा यह ही महाप्रभु जी की अटूट देन है।

* नामे रुचि *

ऐसा देखा गया है कि हमारे देश में हिन्दुओं में प्रायः सभी लोग किसी न किसी प्रकार से हरि नाम, गायन, स्मरण, कीर्त्तन करते हैं। अब तो प्रभु कृपा से विदेशी भी कीर्त्तन में लगे रहते हैं। विदेशों में भी कीर्त्तन का आनन्द ये लोग ले रहे हैं। तथा दर्शकों एवं पशु-पक्षियों एवं वृक्षों को लाभान्वित कर रहे हैं। ये लोग या तो व्यक्तिगत अलग-अलग कीर्त्तन करते हैं, या एकान्त में कीर्त्तन करते हैं। या मण्डली में हरि-नाम कीर्त्तन करते हैं। कुछ लोग तो नियम से नित्य प्रति करते हैं। कुछ कभी-कभी अवसर प्राप्त होने पर ऐसा करते हैं। कुछ विशेष उत्सवों पर कीर्त्तन करते हैं। कुछ तो स्वयं ही लगन से करते हैं। कुछ दूसरों के उकसाने से कीर्त्तन करते हैं। कुछ केवल शौकिया ही कीर्त्तन करते हैं। धार्मिक ग्रन्थों में हरि नाम की महिमा वर्णन की गई है। परन्तु अधिकांश लोगों को हरि नाम लेने की प्रथम उपलब्धि भी प्राप्त नहीं हुई यानी हृदय की पवित्रता प्राप्त नहीं हुई।

हरिनाम से जन्म-जन्मान्तरों के पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसा साधक श्रीकृष्ण व श्रीकृष्ण नाम में अन्तर नहीं पाता है। यह महान् उपलब्धि है।

इस प्रकार को उपलब्धि प्राप्त न होने के कई कारण हैं। और इन्हीं कारणों से लोगों को धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित फल तीर्थ यात्राओं आदि से नहीं मिलते हैं।

१—प्रथम कारण है—नाम तथा नाम शक्ति में विश्वास की अति कमी। या विश्वास की खातिर विश्वास (परंपरागत) करना या दृढ़ता न होना। इस प्रकार की श्रद्धा विश्वास केवल आवेशात्मक (Emotional) ही है। न कि धर्म ग्रन्थों द्वारा प्रतिपादित हो। धर्म ग्रन्थों में बताया हुआ विश्वास व श्रद्धा तो बिना महत् कृपा के प्राप्त

नहीं हो सकता है कि महत जीव (Saints) तो नाम का गायन महान् पवित्रता से करते हैं। इस प्रकार के विश्वास वाले महत (Saints) कैसे होते हैं ? जो श्रीकृष्ण तथा उनके '**नाम**' की एकता ही समझते हैं। जो नितान्त निस्वार्थ भावना से नाम लेते हैं। ऐसे लोगों के समस्त धार्मिक कृत्य बिना किये ही किये हुये के समान हैं। परन्तु इस प्रकार के महत पुरुष पूर्ण भारतवर्ष में श्री चैतन्य प्रभु के कुछ ही भक्त या वैष्णव हैं। साधु, बाबा, महात्मा, होना एक बात है। इस प्रकार का महत पुरुष होना बिल्कुल दूसरी बात है।

* हरिनाम लेने वाले तीन प्रकार के हैं *

१—पूर्ण संसार में कुछ ही ऐसे भाग्यवान् महत पुरुष हैं जो पवित्र नाम लेते हैं और कोई अपराध नहीं करते हैं (नामापराध नहीं करते हैं)।

२—कुछ लोग नामाभास (नाम लेने में) करते हैं।

३—शेष लोग (नाम लेने में) नामापराध करते हैं।

(अ) प्रथम श्रेणी के जीव चमकते हुये सूर्य के समान हैं।

(ब) दूसरी श्रेणी के जीव प्रातः सूर्य उदय से पूर्व की धुंधली वेला के समान हैं।

(स) तीसरे लोग घोर अँधेरी मध्य रात्रि के समान हैं।

कीर्त्तन करने में हरिनाम लेने में जो जान बूझकर अपराध करता है। उसे निर्धारित फल की प्राप्ति नहीं होती है उसको अपराध करने से आगे के जन्मों में कष्ट प्राप्त होंगे। ऐसा बहुदा देखा गया है कि ऐसे अपराधियों को सांसारिक उपलब्धियां प्रचुर मात्रा में होती हैं (यह उपलब्धियां पूर्व के कर्मों के अनुसार हैं) परन्तु निश्चय ही उसके भविष्य में महान् कष्टों का समूह रखा हुआ है जो उसे भोगना पड़ेगा। अतः सावधान रहना चाहिये। ऐसे जीव चोरों का डर, डाकुओं का डर, भयंकर जंगली जानवरों का डर, साँप आदि का भय, भयंकर दुर्व्यसनों, क्रोध, ईर्ष्या आदि से घिरे रहते हैं।

* नामाभास *

जब नाम के प्रभाव का धुन्धलापन अनुभव होता है पर आभास तो रहता ही है। इससे गहरे अन्धेरे का नाश होता है। यानी माया या अज्ञान दूर होता है। और हृदय से समस्त चोर, डाकू भाग जाते हैं। नामाभास से माया का छुटकारा भी मिलता है। इसके बाद हृदय की पवित्रता भी प्राप्त होती है।

* शास्त्रों एवं धार्मिक ग्रन्थों द्वारा नामाभास का विवेचन *

सूर्योदय से पूर्व की धुन्धली वेला नामाभास (हरिनाम) की स्थिति है। यह वह बेला है जहां अँधेरा रहता है न सूर्य उदय होता है। यद्यपि सूर्य दृष्टिगोचर तो नहीं होता है तो भी सूर्य अपनी शक्ति द्वारा उदय होने से पूर्व उस अंधेरे को नष्ट कर सकता है केवल धुन्धली चमक के द्वारा। नामाभास उस दशा को कहते हैं जहां कोई अपराध तो बना नहीं परन्तु साथ-साथ श्रीकृष्ण के साथ पाँचों में से कोई सम्बन्ध भी स्थापित नहीं हुआ है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य अगर कोई सम्बन्ध हो गया है कि श्रीकृष्ण ही मेरे सदैव के प्रभु हैं। मैं उनका नित्य दास हूँ। मैं उनका सखा हूं। या वे मेरे प्रिय पुत्र हैं। या मेरे कान्त हैं। तब तो जीव का हरिनाम प्रति नाम सत्य ही पवित्र हरिनाम होगा। इस प्रकार न तो नाम लेने वाला अपराधी है न उसने नामाभास ही किया है।

* नामापराध क्या है ? *

नामापराध असंख्य हैं जो जीव प्रतिदिन करते हैं परन्तु श्री व्यास जी पद्मपुराण में १० नामापराधों का वर्णन करते हैं। नामापराध पापों से प्रथक् हैं तथा पापों से अति गंभीर हैं। साधारण पुण्य (Ordinary Virtue) सुकृति (Spiritual Virtue)। जिस प्रकार से इन दोनों में महान् अन्तर है, उसी प्रकार पाप तथा नामापराध में अन्तर है।

१ –पवित्र साधु (Pure saint) चाहे गृही हो या वैरागी को बुरा भला कहना, अवज्ञा करना, बुराई करना, यह प्रथम नामापराध है। जो इस प्रकार का अपराध करते हैं उनको जिह्वा के टोंने पर कभी हरिनाम नहीं आ सकता है।

२ –श्रीकृष्ण नाम – रूप, गुण, लीला, धाम, परिकरों को प्रथक्-प्रथक् मानना यानी इनमें भेद बुद्धि रखना। इनमें माया के गुणों का छींटा तक न मानना। इनको दिव्य न मानना तथा श्रीशिव को श्रीकृष्ण का प्रतिद्वन्दी मानना, श्रीशिव और कृष्ण में भेद मानना। यह घोर नामापराध है।

३—अगर हरिनाम लेने वाला, कीर्त्तन करने वाला, शिक्षागुरु या दीक्षागुरु का अनादर करता है। आत्मा का उल्लंघन करता है तो यह तीसरा घोर नामापराध है।

४—चौथा नामापराध धार्मिक ग्रन्थों, वेद-पुराण आदि का निरादर करना।

५—धर्म ग्रन्थों में नाम की महिमा को असत्य मानना पांचवा नामापराध है।

६—भगवान नामों को कपोल कल्पित या मानव द्वारा गढ़े हुये मानना यह छठवां अपराध है।

७—हरिनाम को शक्ति समझकर उसी के आश्रय से दिन भर पाप करना रात्रि को कुछ कीर्त्तन करके समझना कि इस कीर्त्तन की शक्ति से पाप नष्ट होते हैं। यह बड़ा भारी सातवां नामापराध है।

८—गायादत स्थान में पवित्रता से रहना। तपस्या युक्त जीवन बिताना। व्रत आदि करना। दान करना तथा अनेकों त्याग करना यह सोचकर कि ये सब काम हरिनाम की तुलना या बराबरी के हैं। आठवां नामापराध है।

९—नवां अपराध है—जिनका विश्वास नहीं है। जो स्वयं इच्छुक नहीं है ऐसे जीवों को हरिनाम लेने की शिक्षा देना।

१०—पूर्णतया जानते हुये कि नाम में आश्चर्यमयी शक्ति है फिर नाम लेने में रुचि नहीं लेते हैं और नाम लेने में रुझान नहीं रखते हैं। और अपने शारीरिक आनन्द में लिप्त रहते हैं। वे दसवीं कोटि के नामापराधी हैं।

* नामाभास चार प्रकार का है *

(१) **संकेत**—भगवान का नाम लेना परन्तु लक्ष्य किसी दूसरी वस्तु पर हो या किसी व्यक्ति पर हो। या भगवान नाम से किसी व्यक्ति को पुकारना अजामिल इसका उदाहरण है जिसने अपने लड़के को नारायण नाम से पुकारा क्योंकि नारायण नाम उसका था और नारायण भगवान का नाम है। यह बड़ा पापी था। परन्तु नामाभास करते हुये वह मुक्त हो गया हालाँकि उसने कोई नामापराध नहीं किया था।

(२) **परिहास**—किसी व्यक्ति का मजाक उड़ाते हुये भगवान नाम लेना। "अरे तू राम हो गया है"।

(३) **स्तोभ**—गाना गाते हुए भगवान नाम शामिल कर लेना हालांकि भगवान नाम लेने का उसका इरादा नहीं है।

"रामा रामा रटते रटते बीती रे उमरिया"

Being unmindful to utter the Name of Hari.

(४) **हेला**—सोते, खाते, खेलते, पीते लापरवाही से भगवान का नाम लेना।

यह चारों प्रकार का नामाभास यह न जानते हुये कि मैं भगवान का नाम ले रहा हूं किया जाता है। नामाभास का अन्तिम फल मोक्ष है। माया से मुक्ति प्राप्त होती है। नामाभास करते-करते पवित्र नाम लेने का समय आता है। साधक जितना-जितना पवित्र नाम लेता है उतना ही वह कृष्ण प्रेमरूपी अमृत को पीता जाता है।

तब क्या करना चाहिये? नामापराधों के कारण नाम लेना बन्द कर देना चाहिये? जानकर अनजान कर नामापराध तो होते ही हैं। नहीं, नामापराधों के कारण नाम लेना हमको कदापि बन्द नहीं करना चाहिये। जब तक साधक की परिपक्व अवस्था न हो तब तक वृन्दावन में नामापराध करते हुये निवास करना चाहिये। जैसे ही नामापराध हो वहां से तुरन्त चल देना चाहिये। श्री वेदव्यास जी ने पद्मपुराण में इस समस्या का हल साधकों को बताया है।

"जो लोग हरिनाम के विरुद्ध बिना इरादे के नामापराध करते हैं या तो किसी कमजोरी के कारण या योग्य होने के कारण (Inabilits) परन्तु सत्य रूप से वे श्री भगवान नाम लेने के हृदय से बड़े इच्छुक हैं। ऐसे साधकों को हरिनाम लगातार लेते रहना चाहिये परन्तु नामापराधों के लिये पश्चाताप अवश्य-अवश्य करते रहना चाहिये। ऐसा करने से शनैः शनैः समस्त पाप नष्ट होंगे। अपराधों से मुक्त होगा और बुरे विचारों से उसका हृदय छुटकारा पाकर पवित्र हो जावेगा। पवित्र नाम उनके हृदय में जाग्रत होगा। नाम उनकी जिह्वा के टोंने पर नृत्य करने लगेगा तथा उनके हृदय को प्रेम से भर देगा।

मजे की बात यह है जैसा कि मेरा व्यक्तिगत अनुभव भी है तथा व्रजयात्रा में अनेकों वैष्णवों को देखा तथा निज सम्पर्क में नित्य देखा जा रहा है कि ख्याति प्राप्त धार्मिक व्यक्ति जो अपने को कट्टर वैष्णव मानते हैं या जिनको लोग कट्टर वैष्णव कहते हैं वे भी भगवान नाम लेने में अधिक रुचि नहीं रखते हैं बल्कि अन्य प्रकार की पूजा सेवा एवं अर्चना को अधिक महत्व देते हैं। यह बिना हिचकिचाहट में कहा जा सकता है कि बड़े-बड़े कथा वाचक जिनकी रुचि जितनी कथा कहने में

है उसका सौवां अंश भी नाम लेने में नहीं है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है।

* शैतान मन और इन्द्रियों को कैसे काबू में किया जावे ? *

इन्द्रियों को जबरदस्ती रोकना Suppression by force यह रोग का इलाज नहीं है। न सही स्थिति है। जिस प्रकार काले जहरीले साँप को एक मिट्टी के घड़े में बन्द कर दिया जावे तो क्या उसका जहर कम हो जावेगा या उसके काटने से मत्यु न होगी ? ऐसे साँप को जिसे जबरदस्ती घड़े में बन्द कर दिया है जो हवा न जाने से और क्रोधी हो गया है अगर थोड़ी देर के लिये भी घड़े का मुँह खोलो तो साँप तुरन्त उस व्यक्ति को काटेगा जो उसके सामने होगा। परन्तु अगर साँप का जहर व दाँत सपेरे द्वारा निकाल लिये जाते हैं तो न सिर्फ उसका जहर ही समाप्त हो जावेगा अपितु वह साँप सपेरे के लिये जीविका का साधन बन जाता है। उससे फिर कोई हानि नहीं हो सकती है। इसी प्रकार जब हमारा शैतान मन व इन्द्रियाँ कृष्ण प्रेम में तर हो जायेंगी यानी भक्ति में ही लिप्त हो जावेंगीं। तब साधक का चित्त युगल चरणों की सेवा में लग जावेगा तो ये इन्द्रियां व मन भी हमारी भक्ति में अपने आप सहायक हो जावेगा। यह क्रियात्मक रहस्य महत् कृपा द्वारा ही प्राप्त होता है।

भक्ति में ६४ अंग हैं जिनसे श्री भगवान प्रसन्न होते हैं। ६४ में से ९ अंगों में ही पूर्ण भक्तियोग भर दिया है। श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, नाम व लीलाओं का चिन्तन, पाद सेवन, पूजा, निवेदन, सेवा तथा आत्म समर्पण फिर इन ९ अंगों को ५ अंगों में विभाजित किया गया है।

१—पवित्र साधुओं तथा भक्तों (Pure saints) के साथ-सत्संग।

२—उनसे श्रीमद्भागवत श्रवण करना।

३—व्रजवास करना।

४—हरिनाम गायन करना।

५—युगल सरकार की मानसिक सेवा।

इन ५ अंगों को तीन अंगों में विभाजित किया है। श्रवण, कीर्त्तन, लीला स्मरण इन तीनों को फिर एक कर दिया है यानी श्रीकृष्ण नाम कीर्त्तन करना (यह विश्व व्यापक साधन है)

श्रीमद्भागवत में स्पष्ट कहा है—"इस भूतल पर सब जीवों का उत्तमोत्तम धर्म भक्ति करना है। भक्तियोग है। यह भक्तियोग केवल हरि-नाम गायन, कीर्त्तन एवं जप करने से प्राप्त होता है। नाम संकीर्त्तन या कीर्त्तन करने से युगल सरकार की प्रेममयी (रागमयी) मानसिक सेवा प्राप्त होती है। यही साधना का अन्त है। भज्—सेवा।

एक दिन श्रीराधाकुण्ड पर बैठे श्रीकृष्णश्रीराधिका जी से बोले—"हे प्रिये! मैं आज आप से कुछ पूछना चाहता हूं। आप उत्तर देने की कृपा करें" श्रीमती राधिका ने कहा—"आप प्रश्न करिये।"

श्रीकृष्ण—ऐसे जीव कौन हैं जो दूसरों को तृप्त करके स्वयं परि-तृप्त हो जाते हैं? ऐसे जीव कौन हैं जो दूसरों के कष्ट देखकर आप उनसे अधिक कष्टमय हो जाते हैं? ऐसे जीव कौन हैं जो महान् समृद्धशाली जीवन प्राप्त करके, प्रचुरमात्रा में धन प्राप्त करके, कभी भी हर्षित नहीं होते हैं। कभी भी अभिमान नहीं करते हैं एवं अपने को तृणवत् समझते हैं।

श्रीराधिका जी—ऐसी तो मेरी उम्र वाली मेरी प्रिय सखी ललिता, विशाखा आदि हैं, या इस वृन्दावन के वैष्णवगण हैं।

जीव को, साधक को, इस वैष्णव की परिभाषा को कभी नहीं भूलना चाहिये तथा वैष्णव बनने का प्रयास निरन्तर करते रहना चाहिये!

श्रीराधे! श्रीराधे!! श्रीराधे!!!

श्रीमन्महाप्रभुमुखोद्गीर्ण श्रीयुगल परिहार स्तोत्रम्

हे सौन्दर्य्यनिदान रूपगरिमन् माधुर्य्यलीलानट !
हे आश्चर्य्यविशेषवेशधर हे हे वंशिभूषविभो !
हे वृन्दाटविभूविलासिनि ! लसत्केलिकला-कौमुदि !
हे राधे चरणे विधेहि शरणं हे कृष्ण तृष्णां हर ॥ १ ॥

हे सौन्दर्य्य के निदान ! हे रूप के गौरव ! हे माधुर्य्य लीला के नट नागर ! हे अद्भुत विशेष वेश समूह को धारण करने वाले ! हे वंशी-विभूषित व्रज व्यापक ! हे वृन्दावन भूमिविकासिनि ! हे शोभायमान केलि कला की कौमुदिरूपिणी ! हे श्रीराधे ! आप अपने चरण में शरण अर्थात् सेवा रस दीजिये और हे श्रीकृष्ण ! आप मेरी तृष्णा का नाश कीजिये अर्थात् दर्शनामृत प्रदान के द्वारा कृतार्थ कीजिये ।।१।।

हे हे कृष्ण व्रजेन्द्रनन्दन विभो हे राधिके श्रीमति !
हे श्रीमल्ललितादिसख्यसुखिते ! हे श्यामलाप्रेमदे !
हे लीलाकलनात्त - लालस - लसद् - भंगीत्रयप्रेयसि !
हे राधे चरणे विधेहि शरणं हे कृष्ण तृष्णां हर ॥२॥

हे श्रीकृष्ण ! हे व्रजेन्दनन्दन ! हे सर्व व्यापक ! हे श्रीराधिके ! हे श्रीमति ! हे श्री ललितादि सखियों से सुख प्राप्ते व उन्हें सुख देने वाली ! हे श्यामला ! सखि को प्रेम देने वाली ! हे लीला का रस लालस त्रिभंगी श्यामसुन्दर की प्रिये ! हे श्रीराधे ! चरण में शरण दीजिये । हे श्रीकृष्ण तृष्णा का नाश कीजिये ॥२॥

हे पीताम्बर - शोभनाब्जकर हे हे नीलचित्राम्बरे !
हे वंशीवट - केलि - कौतुकपटो हे कुञ्जगेहेश्वरि !
हे श्री रासविलास - लम्पट गुरो ! हे सुन्दरि प्रीतिदे !
हे राधे चरणे विधेहि शरणं हे कृष्ण तृष्णां हर ॥३॥

हे पीताम्बर से शोभित ! हे हस्तों में कमल धारण करने वाले ! हे विचित्र नीलाम्बर धारिणी ! हे वंशीवट के केलि कौतुक में परम पण्डित ! हे निकुञ्ज गृह की ईश्वरि ! हे श्री रास विलास लम्पट के गुरु ! हे सुन्दरियों को प्रीति देने वाली ! श्रीराधे ! चरण में शरण दीजिये ! हे श्रीकृष्ण तृष्णा का नाश कीजिये ।।३।।

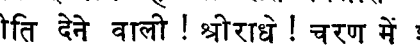

हे जाम्बुनदनिन्दि - सुन्दरतनो हे हे घनश्यामल !
हे हे पंकज - पत्र - नेत्र - युगले हे खंजनी - लोचने !
हे चूड़ामणिवद्धचामर कचे हे हारिणि स्वामिनि !
हे राधे चरणे विधेहि शरणं हे कृष्ण तृष्णां हर ।।४।।

हे सुवर्ण निन्दित सुन्दर शरीर वाली ! हे हे घन श्यामल ! हे हे कमल पत्र के सदृश नेत्र युगल वाली । हे खंजनी लोचन ! हे चूड़ावेणी से बँधे हुए चीर के तुल्य केश वाली ! हे मनोहारिणि ! हे स्वामिनि ! हे श्रीराधे ! अपने चरण में शरण दो । हे कृष्ण ! तृष्णा को हरो ।।४।।

हे हे शारदापूर्णचन्द्रवदने हे हे सुरम्यानन !
हे श्रीवत्सांकित चारुचित्र हृदये ! हे चित्रलेखाञ्चिते !
हे बिम्बाधर - चारुचित्रचिबुके ! भ्रू भंग - रम्यालिके !
हे राधे चरणे विधेहि शरणं हे कृष्ण तृष्णां हर ।।५।।

हे हे शरत् कालीन पूर्णचन्द्र वदने ! हे हे अत्यन्त मनोहर लोचन वाले ! हे श्रीवत्स चिह्न से अङ्कित ! हे मनोहर विचित्र हृदय वाली ! हे चित्रलेखा सखि से युक्त ! हे बिम्बफल के तुल्य अधर वाले, हे मनोहर विचित्र चिबुक वाली, हे भ्रूभंग से मनोहर कपोल वाली ! हे श्रीराधे ! चरणों में शरण दीजिये ! हे श्रीकृष्ण ! तृष्णा का नाश कीजिये ।।५।।

हे हे भानुसुता - यशोमतिसुतौ रामानुज श्यामल !
हे नाथ व्रजचन्द्र गोकुलपते हे नागरीनागर !
हे सर्व्वस्वविलासिनि - रति परे हे केशवामोदिनि !
हे राधे चरणे ि देहि शरणं हे कृष्ण तृष्णां हर ।।६।।

हे हे भानुनन्दिनि-यशोदा नन्दन ! हे रामानुज श्यामल ! हे प्राण-नाथ । हे व्रजचन्द ! हे गोकुलपते ! हे नागरि ! हे नागर ! हे सर्व्वस्व ! हे

विलासिनि ! हे रति परायणे ! हे केशव को आनन्ददायिनि ! हे श्रीराधे !! चरण में शरण दीजिये ! हे कृष्ण ! तृष्णा का नाश करो ॥६॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

हे गान्धर्व्वे नटवरवपु मन्मथानन्द - सिन्धो !
हे वैदग्ध्याविक - मधुरिमाधार हे प्राणनाथ !
हे रामापरमे परात्परपरीरम्भे सदोल्लासिनि !
हे राधे चरणे विधेहि शरणं हे कृष्ण तृष्णां हर ॥७॥

हे श्री गान्धर्विके ! हे नटवर विग्रह ! हे मन्मथ के आनन्द सागर ! हे वैदग्ध के राशि, हे मधुरिमा के आधार, हे प्राणवल्लभ, हे रमणि, हे सर्वश्रेष्ठ, हे परात्पर श्रीकृष्ण से आलिंगिते ! हे निरन्तर उल्लास शालिनि ! हे श्रीराधे ! चरण में शरण दीजये ! हे श्रीकृष्ण ! तृष्णा का नाश कीजिये ॥७॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

कारुण्यामृत चन्द्र सुन्दर वपुर्लावण्य लीलानट !
हे गोपीगण नाथ गोत्रधर हे गोविन्द गोपाल हे !
हे गौरी-गुरु - गौरवाखिल - गुरो गोपांगना वेष्ठिते !
हे राधे चरणे विधेहि शरणं हे कृष्ण तृष्णां हर ॥८॥

हे कारुण्यामृत के चन्द्रमा ! हे सुन्दर विग्रह ! हे लावण्य लीला के नटराज ! हे गोपियों के नाथ ! हे गोवर्द्धन धारिन ! हे गोविन्द, हे गोपाल, हे गौरांगीगणों के गुरु गौरव ! हे अखिल गुरो ! हे गोपांगनाओं से हरिवेष्टिते ! हे श्रीराधे ! चरण की शरण दीजिये ! हे कृष्ण ! तृष्णा का नाश कीजिये ॥८॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

हे हे कृपालुचरित ! व्रज कल्पवृक्ष ! कारुण्यलेशकृत कातर-लोक रक्ष ।
हे कृष्ण ! हे रमण ! हे भुवनैक नाथं ! हा हा कदाति करुणा भवतोर्भवेन्मे॥

हे हे कृपालुचरित वाले । हे व्रज कल्पवृक्ष ! हे करुणालेश से ही मातरजनों के रक्षक ! हे कृष्ण ! हे रमण । हे भुवन के नाथ ! हे श्री-राधिके ! कब दोनों की मेरे लिये अति करुणा होगी ?

प्रेमाभक्ति प्राप्त करने के लिये यहां वर्णित श्लोकों का प्रेम से पाठ करना चाहिये

❀ श्री माधवेन्द्र पुरी द्वारा रचित युगलाष्टकम् ❀

❋

वृन्दावन विहाराढ्यौ सच्चिदानन्द विग्रहौ।
मणिमण्डपमध्यस्थौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥१॥

पीतनीलपटौ शान्तौ श्यामगौरकलेवरौ।
सदारासरतौ सव्यौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥२॥

भावाविष्टौ सदारम्यौ रासचातुर्य्यपण्डितौ।
मुरलीगानतत्वज्ञौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥३॥

यमुनो पवना वासौ कदम्बवनमंदिरौ।
कल्पद्रुमभवनाधीरौ राधाकृष्णौ भवाम्यहम् ॥४॥

यमुनास्नानसुभगौ गोवर्धनविलासिनौ।
दिव्यमन्दारमालाढ्यौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥५॥

मजीररञ्जित पदौ नासाग्र गज मौक्तिकौ।
मधुस्मेर सुमुखौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥६॥

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डे सृष्टिस्थित्यन्तकारिणौ।
मोहनौ सर्वलोकानां राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥७॥

परस्पर रसाविष्टौ परस्परगण प्रियौ।
रस सागर संपन्नौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥८॥

वृन्दावन में विहारशील, सत्, चित्, आनन्दमय विग्रह। मणिमय मंदिर में विराजमान श्रीराधा-कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

पीताम्बर तथा नीलाम्बर धारी, शान्त, श्याम तथा गौरांग स्वरूप, निरन्तर रास क्रीड़ा, परायण, सत्यरूप, श्रीराधा-कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

भावाविष्ट, सदा मनोहर, रासक्रीड़ा की मधुरता में परम पण्डित, मुरली ज्ञान में तत्वज्ञ श्रीराधा-कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥

यमुना के उपवन में निवासकारी, कदम्ब वन बिहारी, कल्पवृक्षमय श्रीवृन्दावन के अधीश्वर श्रीराधा-कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ।।४।।

यमुना जल में विहार शील, गोवरधन विलासी, दिव्यमंदार पुष्पों की माला से युक्त, श्रीराधा-कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ।।५।।

मंजीर से शोभित चरण कमल वाले, नासाग्र में गजमौक्तिक धारी, मधुर मन्द हास्ययुक्त, सुन्दर मुख वाले, श्रीराधा-कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ।।६।।

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के सृष्टि, स्थिति, संहार करने वाले, समस्त लोक मोहित, श्रीराधा-कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ।।७।।

दोनों-दोनों के रज में आविष्ट, दोनों-दोनों के गणों में प्रिय, रस के सागर स्वरूप, श्रीराधा-कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ।।८।।

❀ श्री श्री जीवगोस्वामी कृत युगलाष्टकम् ❀

कृष्णप्रेममयी राधा राधाप्रेममयो हरिः जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम
कृष्णस्यद्रविणं राधाराधाया द्रविणहरिः जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ ,,।।२
कृष्णप्राणमयी राधा राधाप्राणमयो हरिः जीवने ,, ,, ,, ,, ।।३
कृष्णद्रवमयी राधा राधाद्रबमयो हरिः ,, ,, ,, ,, ।।४
कृष्णगेहे स्थिता राधा राधा गेहेस्थितो हरिः ,, ,, ,, ,, ।।५
कृष्णचित्तस्थिता राधा राधा चित्तस्थितो हरिः ,, ,, ,, ,, ।।६
नीलाम्बर धरा राधा पीताम्बरधरो हरिः ,, ,, ,, ,, ।।७
वृन्दावनेश्वरीराधा कृष्णो वृन्दावनेश्वरः ,, ,, ,, ,, ।।८

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

❀ श्रीमहाप्रभु द्वारा अपने स्वरूप का स्वयं वर्णन ❀

श्रीमद्राधा - रसमयी रसज्ञा रसिका तथा ।
रासेश्वरी रसभक्ति रसपूर्णा रसप्रदा ।।१।।

रङ्गिणी रस लुब्धा च रासमण्डलकारिणी ।
रस बिलासिनि राधा राधिकारसपूर्णदा ।।२।।

रामा रत्ना रत्नमयी रत्नमाला सुशोभना ।
रक्तोष्टी रक्तनयना रक्तोत्पलविधारिणी ।।३।।

रमणी रामणी गोपी वृन्दावनविलासिनि ।
नाना रत्नाविचित्रांगी नानासुखमयी सदा ।।४।।

संसारपारतरणी वेणुगीतविनोदिनी ।
कृष्णप्रिया कृष्णमयी कृष्ण ध्यानपरायणी ।।५।।

सदानन्दा क्षीणमध्वा कृष्णा कृष्णालया शुभा ।
चन्द्रावली चन्द्रमुखीचन्द्रा च कृष्णवल्लभा ।।६।।

वृन्दावनेश्वरी देवी कृष्णा रंगी परागतिः ।
ध्यानातीत ध्यानगम्या सदा कृष्णकुतुहली ।।७।।

प्रेममयी प्रेम रूपा प्रेमा प्रेम विनोदिनी ।
कृष्ण प्रिया सदानन्दी गोपीमण्डलवासिनी ।।८।।

सुन्दरांगो च स्वर्णाभा नीलपट्टीवधारिणी ।
कृष्णानुरागिणी चैव कृष्ण प्रेम सुलक्षणा ।।९।।

निगूढ़ रससारङ्गी मृगाक्षी मृग लोचना ।
अशेष गुण पारा च कृष्ण प्राणेश्वरी समा ।।१०।।

रासमण्डलमध्यस्था कृष्ण रङ्गी सदा शुचिः ।
ब्रजेश्वरी ब्रजरूपा ब्रजभूमिसुखप्रदः ।।११।।

रसोल्लासा मदोन्मत्ता ललितारससुन्दरी ।
सर्व्वगोपीमयी नित्या नाना शास्त्रविशारदा ।।१२।।

कामेश्वरी कामरूपा सदा कृष्ण परायणा ।
पराशक्ति स्वरूपा च सृष्टिस्थितिविनाशिनी ।।१३।।

सौम्या सौम्यमयी राधा राधिका सर्वकामदा ।
गंगा च तुलसी चैव यमुना च सरस्वती ।।१४।।

भोगवती भगवती भगवीच्चत्त रूपिणीः ।
प्रेमभक्ति - सदासङ्गी प्रेमानन्द विलासिनी ।।१५।।

सदानन्द मयीनित्या नित्य धर्म परायणी ।
त्रैलोक्य कर्षणी आद्या सुन्दरी कृष्ण रूपिणी ।।१६।।

शतमष्टोत्तरं नाम यः पठेत् प्रयतः शुचिः ।

प्रातः काले च मध्याह्ने संन्ध्यायां मध्यरात्रिके।
यत्र तत्र भवेत्तस्य कृष्णाप्रेमयुतो भवेत् ॥१७॥

राधिका-कृष्ण=तुलसी माला राधिका कृष्ण स्वरूप है। वैष्णव को पहिनना चाहिये।

रा=र+अ
२७+२=२९
धि=ध+इ
१९+३=२२
का=क+आ
१+२=३ ५४ दाने

कृ=क+ऋ
१+७=८
ष=३१
ण=१५
५४+५४=१०८ दाने

❀ श्रीमच्चैतन्य चन्द्र विरचिता श्रीराधारस मञ्जरी ❀

★

कुचकलशभरार्त्ता केशरी क्षीण मध्या।
विपुलतर नितम्बा पक्वविम्बा धरोष्ठी।
प्रणय मयिवयस्या स्कन्धविन्यस्त हस्ता।
निधुवन रस पुञ्जं याति राधानकुञ्जम् ॥१॥

रमणि रमण खेला रम्भ सम्भावनीया।
रतिरभसग भीराऽभीरनारीसु धीरा।
निकट विनयवद्धोद्ध तकांत प्रसादा।
नरपति वर पुत्री याति राधा निकुञ्जम् ॥२॥

श्यामप्रेमविनोदिनी मधुरिमा धारा धरे स्मेरिणी
गौरी प्रेमवती शुभा च सुभगा प्रेमाब्धि सम्बर्द्धिनी।
गण्डे मण्डितकुण्डला कटितटे धत्ते मुदा किंकिणीं
लोला कांचन देहिनी विजयते वृन्दावनस्थायिनो ॥३॥

शुद्ध स्वर्ण विडम्बिनी परिलसल्लावण्य सन्मोहिनी
नाना रत्न विकासिनी मधुरिमा धारा धरे वंशिनी।
कृष्णप्रेम तरंगिणी निरवधि प्रेमामृता लापिनी
श्याम प्रेम विनोदिनी विजयते राधा सुधा देहिनी ॥४॥

राधेयं नवयौवनाढ्य वयसोल्लासने सानन्दिता
सुस्मेराधर विम्ब चन्द्रवदना हेमाद्रि कान्त्युज्ज्वला ।
नित्यं कल्पतरोस्तले निवसिता वेशेन भूषामयी
नाना शक्तिसमन्विता वितनुतेप्रेमप्रवृत्तिं सदा ॥५॥

नाना गीत विलास नृत्यरभ सैरापूरितं दिङ् - मुखं
गौरी चन्द्रमुखी सरोज नयनो कन्दर्पसम्मोहिनी ।
रम्भा चारु नितम्बिनी रसवती प्रेमामतोद्गारिणी
राधा काञ्चन देहिनी विजयते वृन्दाबनेस्थायिनी ॥६॥

वक्त्रे चन्द्र विलासिनी नयनयोः प्रेम्णा कृपा पांगिणी
विम्बोष्ठाधर दन्तपंक्ति विल सन्मुक्तावली चन्द्रिका ।
दोर्दण्डांघ्रिसमुल्ल सत्पुलकिनी सन्यास विन्यासिनी
राधा काञ्चन देहिनी विजयते कारुण्य कल्लोलिनी ॥७॥

या श्रीः सत्यवती स्वयं भगवती प्रेमानुसम्वादिनी
सा नित्या मधुभाषिणी सुखमई सन्तोषरत्नाकरी।
या राधा सुधियां सुधारसमयी कृष्णप्रिया दुर्ल्लभा
सा जोयात् क्षिति मंडले प्रियतमा वृन्दावनावासिनी ॥८॥

प्रेमोद्गारि दृगन्त वीक्षण लता माजीरयन्तीं परा
नानाभाव विलासिनी सुमधुरां स्मेराति कान्त्याननाम् ।
प्रोद्यात् प्रोद्युतिशात कुम्भलतिका देहां मनोहारिणीं
श्रीमन्नागर रासरत्न जलधिं श्रीराधिकामाश्रेय ॥९॥

सेयं विभाति परिनिन्दित हेम कान्तिः राधा-
विनिन्दित सुधामधुरैर्वचोभिः ।
प्रेम्णावशेन गुरुणा नवरत्न वेशं
यत्किङ्किणी कटि तटे परिरौति चित्रम् ॥१०॥

नवीना श्रीराधा नव रुचिर पूर्णेन्दु वदना
नवीना प्रेमाभिर्न्नव नव सखीभिः परिवृता ।
नवं वृन्दारण्यं नव किशलयालम्बित तरुं
नवीनं रासार्थं व्रजति नवरंगे निधुवनम् ॥११॥

गौरी पद्ममुखी कुरंगनयनी क्षीणोदरी वत्सला
संगीतागमवेदिनी सुखमयी तुंगस्तनी कामिनी ।

श्याम प्रेमविनोदिनी मधुरिमा धाराधरे स्मेरिनी
त्रैलोक्यै कनितम्बिनी बिजयते राधासुधा देहिनी ।।१२।।

रासोल्लास विलासिनी नवलसत सम्पूर्ण चन्द्रानना
शुद्ध स्वर्ण विडम्बि कान्ति विलसत् वक्त्रेण व्याकुण्डला ।
लावण्यामृत मञ्जनी रस कला लोलाब्धि हिल्लोलिनी
राधा प्रेमविनोदिनी विजयते नित्यस्थल स्थायिनी ।।१३।।

उत्तुङ्गस्तन भारभंगुरतनु विद्युच्छटा कच्छविः
श्रोण्यां नीलदुकूलिनो मृदुपदाम्भोजे स्फुरन्नूपुरा ।
सुस्मेराधर चन्द्रकान्ति वदना कन्दर्प दर्पांकुरा
प्रेमान्धा मदमन्थरा विजयते कृष्णप्रिया राधिका ।।१४।।

उन्मीलन्नव यौवना मृदतरोत्फुल्लाब्ज सालंकृता
सुश्रोणी भर भंगुरा स्मर भरस्मेराधरा मेदुरा ।
लीला कन्दुक वासिनी प्रिय सखीस्कन्ध स्फुरत्पालिका
श्यामाश्याम सुहृत्तमा विजयते प्राणाधिका राधिका ।।१५।।

वृन्दावनान्तर चरी सुरपुष्पगुच्छं ।
संभिन्दती मदन मोहित दीर्घनेत्रा ।
कर्णे रसाल मुकुलं स्तवकं वहन्तो ।
श्यामाङ्ग सङ्गमवती जयतीह राधा ।।१६।।

सैवेयं परिभाति चञ्चलरुचिं जित्वा जगन्मोहिनी ।
अत्यन्ताद्भुत सुन्दरी जितसुधावाक्यामृता राधिका ।
ईषद्धास्यमुखी कुरंगनयनी गौरी सुधासारिणी ।
प्रेमानन्द विलासिनी वितनुते प्रेमप्रवृत्तिं मुहुः ।।१७।।

श्रीराधा रति भावमुग्ध हृदया लोकायमानेक्षणा
पाणौ पुष्प धनुः स्रजं च दधती वृन्दावने क्रीडति ।
आश्चर्य्यैरभि चुम्बने रति कलालापैश्च सन्तर्पिता
गोविन्देन समं सखीगणवृता रासोत्सवं कुर्व्वती ।।१८।।

श्यामालिङ्गित गौर देहलतया मेघस्थविद्युच्छविः
निन्दतीविक चाम्बुजद्वय रुचिं पद्मयां तिरस्कुर्व्वती ।
सर्वासां रति केलिवृन्दचतुरस्त्रीणां शिरोभूषणं
श्रीमन्नागर रासरत्न जलधिं श्रीराधिका माश्रये ।।१९।।

रासोल्लास विलासेवल्गु रसिका सौन्दर्य्य सामाश्रया
राधाप्रेममयी रतिञ्च कुरुते वृन्दावने सुन्दरी।
श्रीकृष्णेन समं प्रफुल्ल कुसुमैर्मत्तद्विरेफैर्युता
श्री वृन्दावन देवता विजयते राधासुधा मञ्जरी ॥२०॥

प्रमानन्द विलास हासरसिका श्यामा सरोजेक्षणा
गोपी मण्डल मण्डिता वरतनुः सिन्दूरसीमन्तिनी।
श्री वृन्दावन रास कौतुक परा पीनस्तनोल्लासिनी
श्रीकृष्णस्य विनोदिनी विजयते श्रीराधिका भाविनी ॥२१॥

उत्तम हेम रुचिरा वृषभानु कन्या।
आकर्णनेत्र युगला धृतपद्म हस्ता।
स्वर्णादि भूषण युता नव लोमराजी।
संख्या सहस्र सखिभिर्जयतीह राधा ॥२२॥

तप्त काञ्चन गौराङ्गीं राधां वृन्दावनेश्वरीं।
वृषभानुसुतां देवी प्रणमामि हरि प्रियाम् ॥२३॥

राधायाः कलधौत गौरकिरणैर्वृन्दावनान्तर्गताः
कूजन्मत्तमयूर कोकिलगणा भृङ्गाः कुरङ्गाः शुकाः।
कृष्णस्यादद्भुत हासरास रसिका प्रोल्लास मुग्धाशयां
सान्द्रानन्द रसाकरी स्मितमुखी श्रीकृष्ण गौरेश्वरी ॥२४॥

गौराभृङ्ग कुरङ्ग कोकिलगणाः गौरा शुकाः सारिकाः
गौराः सर्प महीरुहाः वनचयाः गौराणि पुष्पाणि च।
गौराश्चक्र कपोत बर्हि विहगाः गौरश्च वृन्दावनम्
राधा देहरुचाद्भुतं सखिवृतः श्यामोऽपि गौरोऽभवत् ॥२५॥

राधा देहसुचारु गौर किरणैरापूरितं दिङ. मुखं
वृन्दारण्यविहार कल्पतरवः गौराङ्ग वर्णावृताः।
गौराः कोकिलभृङ्ग केलि गवयाः सानन्द वृन्दावनं
राधा देहरुचाद्भुत सखिवृतः श्यामोऽपि गौरो भवत् ॥२६॥

मौलौ केलि शिखण्डिनी मधुरिमा धाराधरे स्मेरिणी
पीनांसे वनमालिनी हृदि लसत्कारुण्य कल्लोलिनी।
श्रोण्यां पीत दुकूलिनी चरणयोर्मञ्जीरविन्यासिनी
लीला काञ्चन देहिनी विजयते श्री कृष्ण संजीवनी ॥२७॥

सौन्दर्य्योत्सव केलि पौरुष रसं गायन्ति ताः सुस्वरं
वीणावेणु मृदङ्ग ताल महतीं सम्बादयन्त्योऽपि च।
राधा नृत्यति दक्षिणे रसवती चन्द्रावली वामतः
मध्ये श्यामल सुन्दरो रसकला मुद्दीपयन्तुत्तमाम् ॥२८॥
अङ्गे गौरसुचन्द्रिका सुचरिते लावण्यभङ्गोत्सवा
श्याम प्रेमसुधानिलौ वयसि संतारुण्यलक्ष्मी स्वयं।
लावण्यैकमला प्रमोहनपदं रूपं जगद्वैभवं
राधायाः समता न चास्ति निखिले ब्रह्मांडमाण्डे क्वचित् ॥२९॥
लीला लोल तरङ्गिणी नय नयोरानन्द कल्लोलिनी
कन्दर्पोद्गम धारिणी रसवती काञ्चीरणन्नूपुरा।
कृष्णः शक्त विलोचना सपुलकाप्रोद्यत्कुचा शोभितां
गोपाली गण सेविता विजयते राधा सुधावर्षिणी ॥३०॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

❀ युगल सरकार की आरती ❀

(पौर्णमासी कृत गान)

राधा राकाशश धर मुरली कर गोकुलपति कुल पाल
जय जय कृष्ण हरे।
राधा बाधा मोचन मुख रोचन विदलित गोकुलकाल
जय जय कृष्ण हरे ॥
राधा परिकर पुण्यव नैपुण्यव गोकुलरूचिपु विशाल
जय जय कृष्ण हरे।
राधा सुकृत वशीकृत मङ्गलमृत तिल गोकुल भाल
जय जय कृष्ण हरे ॥
राधा निजगति धर्मद पुरुशर्मद हतगोकुलरिपु जाल
जय जय कृष्ण हरे।
राधाजीवनजीवन गोव्रजधन गोकुलसरिस - मराल
जय जय कृष्ण हरे ॥
राधामोद रसाकर सरसिजवर गोकुलमंडल नाल
जय जय कृष्ण हरे।
राधाभूषण भूषण गतदूषण गोकुलहृदिल भूपाल
जय जय कृष्ण हरे ॥

हे श्रीराधा रूप, पूर्णिमा के चन्द्र स्वरूप ! हाथों में मुरली धारण करने वाले ! हे गोकुलपति कुल, पालक ! हे हरे ! हे श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो जय हो ! श्रीराधा को बाधा मोचन करनेवाले ! हे सुख प्रकाशक ! गोकुल के काल भय का दलन करने वाले ! हे हरे ! हे श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो, जय हो । श्रीराधा के अनादि पातिव्रत्य आदि पुण्यों के वशीभूत मङ्गल को धारण करने वाले ! गोकुल के मस्तक को तिलक युक्त, सर्वपूज्य करने वाले ! हे हरे ! हे श्रीकृष्ण ! आपको जय हो, जय हो । श्रीराधा के परिकर को पुण्य या सौभाग्य प्रदान करने वाले ! निपुणता - प्रदाता ! गोकुल की अभिलाषाओं में विशालता, उदारता करने वाले । हे हरे ! हे श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो, जय हो । श्रीराधा को निज-प्राप्ति रूप धर्म प्रदान करने वाले ! अतिशय सुख प्रदाता ! गोकुल के शत्रुओं का नाश करने वाले ! हे हरे ! हे श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो, जय हो । श्रीराधा जी के उत्कृष्ट आनन्द रस कमल रूप गोकुल-मंडल के आधार-स्वरूप ! हे हरे ! हे श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो, जय हो । श्रीराधा जी के भूषणों को भूषित करने वाले ! हे दूषण रहित ! हे गोकुल वासियों के हृदय के राजा ! हे हरे ! हे श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो, जय हो ॥

❀ पुष्पाञ्जलि ❀

पुष्पांजलि श्रीराधाया चरणों में अर्पण करती ॥ पुष्पांजलि ॥
तन, मन, धन से कर सेवा सदय होय कर दाया ॥ पुष्पांजलि ॥
राधे तुमसे अरदासा दो सद् ज्ञान छुटै माया ॥ पुष्पांजलि ॥
निशदिन प्रेम लखूँ तेरा इच्छा ये लेकर आई ॥ पुष्पांजलि ॥
हिय बाटिका सुमन भारी प्रेम गन्धि सों मैं लाई ॥ पुष्पांजलि ॥
शरण में लो शरण में लो अपराध क्षमा करि ।
प्रेमाभक्ति दो राधा ॥ पुष्पांजली ॥
राधे रानी ! राधे रानी ! अपने चरणों की दासी ।
बनाओ राधा ॥ पुष्पांजली ॥

श्रवणे राधा नयने राधा
वदने राधा हृदये राधा
पुरतो राधा परितो राधा
मधुरा राधा मधुरा राधा

पापा — की — मौज

शुद्धि-पत्र

प्रूफ़रीडिंग में निम्नलिखित कुछ अशुद्धियां पुस्तक में रह गयी हैं। पाठक कृपया सुधार कर पढ़ें।

पृष्ठ-लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
२-२३	द्वापर	—
२-२७	प्रथम	पृथक्
२-२७	प्रथम	पृथक्
३-८	प्रथम	पृथक्
३-८	प्रथम	पृथक्
३-८	प्रथम	पृथक्
३-१०	प्रथम	पृथक्
५-४	प्रथम	पृथक्
५-२०	जाब	जीव
६-६	पड़ा	पड़ी
८-१५	चार	सार
९-१७	Richer	Riches
९-१७	Salration	salvation
९-२३	winded	minded
१३-१०	as blinder	our blunder
१४-१२	Hundane	Mundane
१५-६	प्रथम	पृथक्
१५-६	Arrociations	Associations
१५-७	सीध	सीधे
१६-१४	क्या	का
२१-१९	ethod	Method
२१-२०	Mathod	Method
२४-१५	प्रमानन्द	प्रेमानन्द
२४-१०	पलब्धि	उपलब्धि
२९-२	वास	वाले
४६-२९	परितो	परतो

०—०

❀ श्रीकृष्णचैतन्य महिमा ❀

●

कृष्णवर्णंत्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञैः सङ्कीर्त्तन-प्रायैर्यजन्तिहि सुमेधसः ॥

भावार्थ—कलियुग में जिस रूप से भगवान अवतीर्ण होते हैं जिस विधान से श्री भगवान की पूजा होती है, (उसे सुनो) बुद्धि लोग (नाम) सङ्कीर्त्तन प्रधान पूजा के द्वारा गौरकान्ति युक्त कृष्ण नाम का वर्णन करने वाले तथा जिनके अङ्ग-उपाङ्ग ही अस्त्र पार्षद हैं—ऐसे उन श्री भगवान (श्रीकृष्णचैतन्य) की अर्चना करते

❀ ❀ ❀

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदः ।
संन्यासकृतसमः शान्तो निष्ठाशान्तिपरायणः ॥

भावार्थ—"कृष्ण" ये सुन्दर वर्णयुक्त नाम वर्णन करने वाले, सु (सोने) की भाँति उज्ज्वल पीत कान्ति युक्त, श्रेष्ठ अङ्गों वाले, च के अङ्गद धारण करने वाले, संन्यास धारण करने वाले, भगवन्नि बुद्धियुक्त, शान्तचित्त, कृष्णभक्तिनिष्ठ एवं निवृत्ति परायण, ये सब भगवान विष्णु के हैं, जो केवल श्रीचैतन्यावतार के सम्बन्ध में वर्णित हैं।

★

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्,
पीताम्बरादरुणविम्बफलाधरोष्ठात् ॥
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात् परंकिमपितत्त्वमहं न जाने ॥

मुद्रक—श्रीहरिनाम प्रेस, बाग बुन्देला वृन्दावन ।